शोधादर्श

९८८–२८
आ. श्री कैलाससागर सूरि ज्ञान मं.
श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा.

२४

प्रकाशक :
तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ
नवम्बर १९९४

संस्थापक एवं आद्य सम्पादक : (स्व.) डा० ज्योति प्रसाद जैन
प्रबन्ध सम्पादक एवं प्रकाशक : श्री अजित प्रसाद जैन,
मन्त्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ० प्र०,
पारस सदन, आर्यनगर, लखनऊ–२२६ ००४
सम्पादक मंडल : डा० शशि कान्त, श्री रमा कान्त जैन

★ विषय-क्रम ★

१.	गुरुगुण-कीर्तन : आचार्य रविषेण	—श्री रमा कान्त जैन	१
२.	Pre-Mediaeval Jain Novels	—डा० ज्योति प्रसाद जैन	३
३.	सम्पादकीय—श्रमणाचार के नये आयाम	—श्री अजित प्रसाद जैन	६
४.	अनेकान्तवाद—व्यवहारिक जीवन में	—श्री रमा कान्त जैन	१२
५.	अनेकान्त का उपयोग	—डा० ऋषभ चन्द्र जैन	२२
६.	सम्मेदशिखर—वस्तु स्थिति	—श्री एम० एल० जैन	२५
७.	बुन्देली जैन कवि श्री चन्दनन्द	—श्री कुन्दन लाल जैन	३४
८.	षड्दर्शन संग्रह—परिचय	—श्री एम० डी० वसन्तराज	३६
९.	लोथर वेण्डेल	—डा० रानी मजूमदार	४२
१०.	पं० अजित प्रसाद	—श्री कैलाश भूषण जिन्दल	४४
११.	उमास्वामी श्रावकाचार—एक अध्ययन	—श्री अजित प्रसाद जैन	५३
१२.	समणसुत्तं (हिन्दी पद्यानुवाद)	—श्री प्रकाश चन्द्र जैन 'दास'	५८
१३.	साहित्य सत्कार	—श्री रमा कान्त जैन	६२
		—श्री अजित प्रसाद जैन	६५
१४.	तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र शोध पुस्तकालय	—श्री अजित प्रसाद जैन	६६
१५.	समाचार विमर्श	—श्री अजित प्रसाद जैन	
	श्री सम्मेद शिखर विवाद : दो आचार्यों के मध्य सौहार्द वार्ता		६७
	करोड़पति दम्पति की वैराग्य साधना		६८
	मुनि कुमुदनंदि महाराज का आचार्य पद अलंकरण		६८
	जैन विश्वविद्यालय की प्रगति		६९
	और अब आचार्य कल्याण सागर महाराज की चरण पादुका		६९

(शेष कवर पृष्ठ ३ पर)

लेखक के विचारों से सम्पादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। लेखों में दिये गये तथ्यों और सन्दर्भों की प्रमाणिकता के संबंध में स्वयं लेखक उत्तरदायी है।

णाणंणरस्स सारं-सच्चं सारभूयं लोयम्मि

शोधादर्श-२४

वीर निर्वाण संवत् २५२१ नवम्बर १९९४ ई०

गुरुगुण-कीर्तन

आचार्य रविषेण

जेहिं कए रमणिज्जे वरंग-पउमाणचरिय वित्थारे ।
कहव ण सलाहणिज्जे ते कइणो जडिय-रविसेणे ।।

—उद्योतन सूरि कृत **कुवलयमाला** (७७८ ई०)

भावार्थ–जिन्होंने वरांग और पद्म के चरित का रमणीक विस्तार किया (अर्थात् विशद और रमणीक वरांगचरित और पद्मचरित लिखे) वे कवि जडित (जटासिंह नन्दी) और रविषेण कैसे श्लाघनीय नहीं हैं, अर्थात् सराहना योग्य हैं ।

कृतपद्मोदयोद्योता प्रत्यहं परिवर्तिता ।
मूर्तिः काव्यमयी लोके रवेरिव रवेः प्रिया ।।

—पुन्नाटसंघीय आचार्य जिनसेन कृत
हरिवंश पुराणम्, प्रथम सर्ग, ३४ (७८३ ई०)

भावार्थ–जिस प्रकार रवि (सूर्य) की मूर्ति प्रतिदिन परिवर्तित होते रहने और कमलों का (विकास) एवं प्रकाश करने के कारण लोक (संसार) में प्रिय है उसी प्रकार रवि (आचार्य रविषेण) की काव्यमयी मूर्ति (काव्य प्रतिमा) जो प्रतिदिन परिवर्तित होने वाली (अर्थात् निरन्तर अभ्यास से निखरने वाली) और पद्म (पद्म मुनि अर्थात् श्री राम चन्द्र) के चरित का विकास एवं प्रकाश करने वाली है, लोक में प्रिय है ।

ऊपर **पद्मचरित** के रचयिता जिन कवि रविषेण का सादर स्मरण किया गया है, वह, **पद्मपुराणम्** के १२३वे पर्व की श्लोक संख्या १६८ में दी गई गुरु परम्परा के अनुसार, उन लक्ष्मण सेन मुनि के शिष्य थे जो अर्हन्मुनि के शिष्य और दिवाकर यति के प्रशिष्य रहे थे । रविषेण जैन आचार्य के रुप में समादृत

हैं। इन आचार्य रविषेण ने बीसवे तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ के तीर्थ में हुए श्री रामचन्द्र, जिनका जैन अनुश्रुति के अनुसार दीक्षा लेने के उपरान्त पद्म मुनि नाम हुआ था, के चरित को संस्कृत भाषा में **पद्मचरित** अपरनाम **पद्मपुराणम्** नाम से निबद्ध किया। उक्त **पद्मपुराण** में १२३ पर्व हैं और ग्रन्थ के अन्त में आचार्य रविषेण ने ग्रन्थ में समाहित अनुष्टुप श्लोकों की संख्या अठारह हजार तेईस प्रमाण बताई है। इसमें वर्णित चरित का आधार कवि ने वर्धमान जिनेन्द्र द्वारा कहे जाने और गणेश्वर इन्द्रभूति द्वारा अर्थ किये जाने पर धारिणीभवम् (धारिणी पुत्र) सुधर्म को परिप्राप्त और तदनन्तर क्रमत: कीर्ति और अनुत्तरवाग्मी द्वारा लिखित कथा को बताया है। इस पुराण के १२३वे पर्व के श्लोक संख्या १८२ में कवि ने इसकी रचना जिन भास्कर श्री वर्द्धमान महावीर स्वामी के सिद्ध (मोक्षगामी) हो जाने के उपरान्त एक हजार दो सौ तीन वर्ष छह मास व्यतीत हो जाने पर अर्थात् ईस्वी सन् ६७६ में पूर्ण होने का उल्लेख किया है। ऊपर उल्लिखित उद्योतन सूरि और आचार्य जिनसेन पुन्नाट के अतिरिक्त अपभ्रंश महाकवि स्वयम्भू और कवि धवल (लगभग ११वीं शती ईस्वी) ने भी रविषेण और इनकी इस कृति का उल्लेख अपनी रचनाओं में किया है। डा० ज्योति प्रसाद जैन के अनुसार रविषेण का **पद्मचरित** संस्कृत भाषा में रामायण की कथा बताने वाला सर्वप्राचीन उपलब्ध जैन पुराण है। उन्होंने इसे रामायण कथा के विभिन्न रूपों के तुलनात्मक अध्ययन और प्राचीन भारत के सांस्कृतिक इतिहास के अध्ययन का महत्वपूर्ण स्रोत भी बताया है।

आचार्य रविषेण से पहले **पद्मचरित** की रचना प्राकृत भाषा में **पउमचरिउ** नाम से विमलसूरि द्वारा भी श्री वर्द्धमान महावीर की सिद्धि (निर्वाण) के ५३० वर्ष पश्चात अर्थात् ईस्वी सन् ३ में की जा चुकी थी। यद्यपि आचार्य रविषेण ने अपनी कृति में विमलसूरि का उल्लेख नहीं किया है, डा० ज्योति प्रसाद जैन का अनुमान है कि रविषेण की कृति विमलसूरि द्वारा प्राकृत में रचित **पउमचरिउ**, जो रामायण कथा का सर्व-प्राचीन उपलब्ध जैन रुप है और जो बाल्मीकि की कथा से भी सामीप्य रखता है, का विशद रुपान्तर है।* डा० पन्ना लाल जैन साहित्याचार्य ने भी **पद्मपुराण** की अपनी प्रस्तावना में यह स्वीकार किया है कि रविषेण के **पद्मचरित** और विमलसूरि के **पउमचरिउ** में कथावस्तु, प्रतिपादन शैली, पर्वों के समानान्त नाम एवं कितने ही स्थलों पर पद्यों का अर्थ साम्य है।

* दृष्टव्य, Dr. Jyoti Prasad Jain: **The Jaina Sources of the History of Ancient India**, pp. 131-82, 180-81.

—रमा कान्त जैन

Pre-Mediaeval Jaina Novels

—Dr. Jyoti Prasad Jain

The modern 'novel' and short-story forms of prose fiction are of comparative recent growth, in the west dating since about the beginning of the 18th century, and in India since the last quarter of the 19th century. Literally meaning something 'new and strange', the term 'novel' is used to denote that literary form of fictitious prose narrative or tale which presents a picture of real life, especially of the emotional crises in the life-history of the men and women portrayed. It does not, however, follow that such tales were unknown to world literature before, only they are not always and necessarily in prose, many being in verse as the bulk of the ancient and mediaeval literature, particularly of the didactic and religious type is.

Western historians of Indian literature, like Weber, Buhler, Jacobi, Hertel, Keith, Macdonell and Winternitz, have all been well impressed with the fact that Jaina monks and authors have always been very good tellers of tales. The commentaries to the canonical texts, even many an early didactic and philosophical work, contain, besides a mass of traditions and legends, numerous fairy-tales and stories. The Jaina Puranas and the many Charitras (Pauranic Kavyas), Kathas, and Kathanakas were often only a frame in which all manner of fairy-tales and stories were inserted. The Champus are ornate novels in prose and verse mixed, and the Dharma-parikshas are didactic-polemical works so closely inter-woven with narratives that they may well be included in the story literature, while there are also satirical humorous tales like the Dhurtakhyana. In some cases, as in the Malayasundari-Katha, of unknown authorship and originally written in Prakrit, "the author", says Winternitz, "has worked up popular fairy-tale themes into a Jaina legend. A veritable deluge of the most fantastic miracles and magic feats almost takes away the reader's breath in this work. Countless motifs well-known in fairy-tale literature are interwoven with the novel."[1]

In addition to all this, there is a vast independant fairy-tale literature of the Jains, in prose and in verse, in Prakrit, Sanskrit, Apabhramsa, even in Kannada, Tamil and other regional languages available in the many collections of stories (the Kathakoshas, or Treasuries of Tales).

There is no doubt that 'all these works, be they stories in plain prose or in simple verse, or elaborate poems, novels or epics, are all essentially sermons. They are never intended for mere entertainment, but always serve the purpose of religious instruction and edification.'[2] In the Jaina novels, it is true, the heroes and heroines after all sorts of adventures usually renounce the world at last and become monks and nuns for the purpose of attaining liberation. Copious instructions on religion are inserted in all convenient places, and underlying the main narrative and most of the inserted stories there is the doctrine of Karma, according to which even the slightest peccadillo must have the effects in future rebirths. But, even in modern times, the novel has been made a vehicle for the teaching of history, the advocacy of causes, the showing up of abuses, and so on, there being so much necessary overlapping of the didactic and the aesthetic.[3]

So even if writers like Winternitz describe the Jaina novels as 'religious novels,' which is nothing but a literal translation of the Jaina term 'Dharma-Katha', the fact does not detract from their being novels. Several of these Jaina novels are fine romantic tales of love and adventures, and in the numerous stories, parables and fairy tales inserted one comes across many themes which are often found in non-Jaina narrative literature and some of which belong to universal literature. As Winternitz avers, the vast Jaina narrative literature is of great importance not only to the student of comparative fairy-tale lore, but also because to a greater degree than other branches of literature the Jaina tales allow us to catch a glimpse of the real life of the common people.

Prominent among the pre-mediaeval Jaina novels are: **Tarangavai-Kaha** of Padaliptasuri (circa 3rd-4th century A. D.),

Varangacharitra of Jatasimhanandi(7th cen.),**Samaraicca-Kaha** and **Dhurtakhyana** of Haribhadra Suri (8th cen.), **Kuvalayamala** of Udyotana (778 A D.), **Nagakumara-Chariu** of Svayambhu (c. 800 A. D.), **Jinadatta-Charita** of Gunabhadra (c. 850 A D), **Upamitibhava-prapancha-katha**—a very popular allegorical novel of Siddharshi (906 A.D.), **Yashastilaka-Champu** of Somadeva (959 A.D.), **Nagakumara-Chariu** and **Jasahara-Chariu** of Pushpadanta,(965 A D.); **Pradyumna-charita** of Mahasena(cen. 975 A.D) **Bhavishya-datta-kaha** of Dhanapala Dharkata, **Tilakmanjari** of another Dhanapala (970 A.D), **Dharmapariksha** of Harisena (988 A.D.) and of Amitagati (1011 A.D.), **Jivandhara-Champu** of Harichandra, **Gadyachintamani** and **Kshatrachudamani** of Vadibhasimha, **Yashodhar-charita** of Vadiraja, **Surasundari-charium** of Dhaneshvara, and **Malayasundari-kaha**(anonymous)—all circa 11th century, **Mrigavati-charita** of Devaprabha and **Samyaktva-Kaumudi** (c. 13th cen.),and **Mahipala-charita** of Charitrasundara, **Champaka-shreshthi-Kathanaka**, **Pala-Gopala-Kathanaka** and **Dana-Kalpadruma** of Jinakirti, **Ratna-chuda-katha** of Jinasagara, **Ambada-charitra** of Amarasuri, **Papabuddhi-Dharmabuddhi-Kathanaka**, **Aghatakumara-Katha**, and **Uttama-Kumara-Charitra** (all circa 15th cen). The list is by no means exhaustive.

References :

1. **History of Classical Literature**, II, p. 533.
2. **Op. cit**, p 521.
3. cf. James Scot, **The Making of Literature**, pp. 362-363.

सम्पादकीय

श्रमणाचार के नए आयाम

समन्वय वाणी (पाक्षिक) के अगस्त (प्रथम) १९९४ में प्रकाशित सम्पादकीय लेख "पतन की पराकाष्ठा" का निम्नलिखित अंश अवलोकनीय है—"चारित्रिक पतन की एक घटना इन दिनों और घटी है जिसकी मिसाल दुर्लभ है। जयपुर स्थित एक निर्माणाधीन होटल के कमरे में एक दिगम्बर मुनि को पलंग (वस्त्रहीन) पर लेटे देखा गया। यही नहीं वे वहां कार्यरत मजदूरों पर बकायदा आदेश फरमाते देखे गए मानो होटल उन्हीं के सुपरविजन में निर्मित हो रहा हो। वह यहां रखो, यह डिब्बा खाली है इसे फेंक दो, तू बैठा क्यों है, सालों से काम ठीक करते भी नहीं बनता, आदि वाक्य उनके मुखारविन्द से उच्चरित हो रहे थे। टी० वी० पर डिश एन्टीना द्वारा स्टार टी० वी०/ जी० टी० वी० आदि का रसास्वादन लेते हुए उन्हें देखा गया है। क्या इस प्रकार के कृत्य जैन साधु के लिए उचित हैं, समाज को विचार करना चाहिए। सुना तो यहां तक भी है कि (इन) आचार्य श्री—की उक्त होटल में पार्टनरशिप है।" इन आचार्य श्री के विषय में और जानकारी प्राप्त करने पर मालूम हुआ कि ये आचार्य महाराज आजकल जयपुर में चातुर्मास रत हैं, रात्रि में बोलते हैं, विदेश में घंटों टेलीफोन पर बातें होती है, अच्छा खासा बिजनेस करते हैं, सट्टे का नम्बर बताते है—मात्र दिगम्बर मुनिवेश धारण किए हैं।

इन आचार्य श्री के दो-तीन वर्ष पूर्व मुम्बई में हो रहे चातुर्मास के दौरान **धर्म मंगल** (मराठी पाक्षिक) की विदूषी सम्पादिका ने इनसे दिनांक २३-७-९१ को साक्षात्कार करके इनकी आगम विरूद्ध चर्या के विषय में कुछ ज्वलन्त प्रश्न पूछे थे जिनका कोई सन्तोषजनक समाधान प्राप्त न होने पर उन्होंने अपनी प्रश्नावली को एक पत्रक के रूप में छपवा कर मुम्बई की दिगम्बर जैन समाज में वितरित कराया था। कुछ प्रश्न निम्न प्रकार थे—

(१) क्या मुनि किसी भक्त या समाज या भट्टारक द्वारा आचार्य पदवी ग्रहण कर सकता है? (आचार्य पदवी ग्रहण करने के लिए इन्होंने अपने दीक्षा गुरु पू० आचार्य विमल सागर महाराज की अनुमति नहीं प्राप्त की थी।)

(२) क्या मुनि अपने साथ गाड़ियाँ, हीटर, कूलर, टी० वी०, पंखे, फ्रीज, फोन इत्यादि भोगापभोग की अपनी सामग्री, परिग्रह रख सकता है? फ्रीज में रखी आइस क्रीम या तत्सम पदार्थ खा सकता है?

(३) क्या मुनि जैन-अजैन समाज को मंत्र, तंत्र, मंत्रित सोने चांदी के सिक्के, नारियल इत्यादि दे कर, बेचकर पैसा जमा कर सकता है ? बोलियों से तथा मंत्र तंत्र देकर लाखों रुपया बटोर कर ले जा सकता है ? • • तिजोरी की चाबी अपने पास में रख सकता है ?

(४) क्या मुनि आर्यिका के साथ या अन्य महिलाओं के साथ अशोभनीय वर्तन कर सकता है ? [दिल्ली से प्रकाशित **चौथी दुनिया** (साप्ताहिक) के दिनांक २७-११-८८ के अंक में इन मुनि श्री का एक जवान लड़की को अपने शरीर से चिपकाए खड़े अशोभनीय मुद्रा मे एक चित्र इस शीर्षक के साथ प्रकाशित हुआ है कि "क्या जैन साध्वियाँ देवदासियों में बदली जा रही है ?" इसी अंक में यह भी छपा है कि दो वर्ष पूर्व जब ये आचार्य श्री उदयपुर में चातुर्मास कर रहे थे तो वहां की एक पारिवारिक बाड़ी (बगीचा) में श्रावक परिवार की किशोरी कन्याओं के साथ 'केलिक्रीड़ा' करते हुए एक चित्र खींचा गया था तथा उससे पहले भी वर्षा वास के दौरान कोटा में एक नव विवाहिता से 'रमण' करते हुए ये आचार्य रंगे हाथों पकड़े गए थे लेकिन यह मामला उनके चहेते सेठों ने दबवा दिया था और उदयपुर की रास लीला भी दबी रही क्योंकि श्रावक परिवार की किशोरी कन्याओं को आचार्य श्री ने सम्मोहित कर लिया था ।]

हमें **चौथी दुनिया** मे छपे उपरोक्त समाचार व चित्र का कोई प्रतिवाद किया गया हो, यह देखने सुनने में नहीं आया ।

उपरोक्त प्रश्नों के अतिरिक्त विदूषी सम्पादिका जी द्वारा और भी ऐसे ही चौकाने वाले कई अन्य प्रश्न आचार्य श्री से पूछे गये जिन्हें विस्तार भय से हम उद्धृत नहीं कर रहे हैं । समक्ष वार्ता में आचार्य जी ने तंत्र मंत्र तथा बोलियों से रुपया इकट्ठा करना तो स्वीकार किया किन्तु कहा कि वे एक सरस्वती मन्दिर बनाने के लिए धन इकट्ठा कर रहे हैं । कितना रुपया इकट्ठा किया है, कहां जमा किया है, सरस्वती मन्दिर कहां बनेगा, इसके बारे में कुछ नहीं बताया। **चौथी दुनिया** के चित्र के विषय में कहा कि ऐसा चित्र दो तस्वीरों को जोड़ कर बनाया जा सकता है । अन्य प्रश्नों का कोई समुचित उत्तर न देते हुये सम्पादिका जी को ब्लैक मेलर तथा अपने आलोचकों को कान्ह पंथी घोषित किया ।

इन आचार्य जी के मुनि-दीक्षा गुरु पूज्य आचार्य श्री विमल सागर महाराज हैं । उन वात्सल्य रत्नाकर, करुणा के सागर, आचार्य श्री द्वारा दीक्षित

कुछ मन्द बुद्धि या अर्द्ध विक्षिप्त छुल्लक हमारे स्वयं देखने में आए हैं। कदाचित् आचार्य श्री अपने करुणा पूरित स्वभाव के कारण किसी को ना करना नहीं जानते तथा पात्र-कुपात्र का अधिक विचार किए बिना ही जो भी दीक्षा की याचना करता है, उसे दीक्षा प्रदान कर देते हैं। हमारे ये आचार्य जिन्होंने श्रमणाचार की धज्जियां बखेरने में जो कीर्तिमान स्थापित किए हैं उनकी मिसाल अन्यत्र मिलना दुर्लभ ही है, इनके दीक्षा गुरु भी इन पर अब कदाचित् कोई अंकुश नहीं लगा सकते क्योंकि अब तो वे स्वयं उनके समकक्ष आचार्य हो गए हैं, भले ही इनके आचार्य बनने में उनकी अनुमति न ली गई हो।

इन आचार्य जी के संघ में इनका कुछ तो शिष्य समुदाय साधु साध्वियों के रूप में होगा ही। यदि वे भी अपने गुरु के पद चिन्हों पर चलते हुए श्रमण चर्या के इस अभिनव संस्करण का ही पूर्ण निष्ठा के साथ पालन करते हों, तो हमें आश्चर्य नहीं होगा।

धर्म नगरी के रूप में विख्यात जयपुर नगर में प्रबुद्ध, शास्त्रज्ञ एवं स्वाध्याय प्रेमी दिगम्बर जैनों की संख्या देश के किसी और नगर की अपेक्षा अधिक ही होगी। इस नगर ने गत दो सौ वर्षों के इतिहास में धर्म के कई मर्मज्ञ परीक्षा-प्रधानी विद्वान उत्पन्न किए जिन्होंने अपना सारा जीवन दिगम्बर जैन धर्म के शुद्ध रूप को अक्षुण्ण बनाए रखने में खपा दिया। हमें खेद मिश्रित आश्चर्य होता है कि जयपुर नगर की धर्म-निष्ठ समाज ऐसे मुनिवेशियों को दिगम्बर जैन मुनि संस्था का मखौल उड़ाते कब तक सहन करती रहेगी।

वैसे जयपुर में चातुर्मास रत उपर्युल्लिखित आचार्य जी ही अकेले ऐसे दिगम्बर जैन साधु नहीं हैं जो ढाई हजार वर्ष प्राचीन जैन श्रमणाचार को नए आयाम दे रहे हैं। **धर्म मंगल** की विदूषी सम्पादिका जी ने मुम्बई जैन समाज को सम्बोधित अपने पत्रक में एक अन्य मुनिराज का नामोल्लेख सहित वर्णन किया है जो स्वयं मेटाडोर ड्राइव करते हैं तथा कुत्ता पाले हुए हैं। हमारे देखने में ऐसा भी संघ आया है जिसमें गुरु व शिष्य दोनों आचार्य पद से अलंकृत हैं, संघ में कोई अन्य त्यागी व्रती नहीं है, केवल एक सुदर्शना युवा संघ संचालिका है जिसे एक हजार रुपया मासिक वेतन दिया या दिलाया जाता है तथा जो संघ के रुपए पैसे का भी हिसाब रखता है। वयोवृद्ध गुरु सरल परिणामी हैं पर शिष्य आचार्य उन्हें यदा कदा डांटते भी देखे गए हैं। शिष्य आचार्य मंत्र-तंत्र वेत्ता हैं तथा इस व्यापार से अच्छा पैसा अर्जित करते हैं। उनके विश्राम कक्ष में दो-दो

टेलीफोन सैट रखे रहते हैं और वे बड़ी देर तक भक्तों से टेलीफोन पर बतियाते रहते हैं। कूलर, हीटर, बिजली का पंखा तो ऋतु अनुसार रहता ही है। लखनऊ से विहार करने के पूर्व इन आचार्य श्री ने श्रद्धालु एवं मंत्र-तत्र के प्रयोग से उपकृत भक्तों से एक मैटाडोर भी अपने संघ को भेंट करवाई।

एक आर्यिका शिरोमणि गृहस्थों के घरों मे जा कर ससंघ रात्रि विश्राम करके उनके गृहों को पवित्र करती हैं तथा भक्त श्रावकों के घरों में जा कर पूजा विधान सम्पन्न कराकर उन्हें उपकृत करती हैं। इनके तथा एक अन्य आचार्य श्री के संघ में उनकी गृहस्थावस्था के कई सदस्य (माँ, बहनें, भाई, भतीजियां आदि) गृह त्यागी हुए स्थायी रूप से उनके साथ रहते हैं तथा संघ की व्यवस्था, रुपए पैसे का हिसाब आदि भी प्रमुख रूप से उन्हीं के हाथ में रहता है।

आज दिगम्बर जैन आम्नाय में कई आचार्य, मुनि एवं आर्यिका माताएं ज्योतिष, तंत्र-मंत्र, के व्यापार में लिप्त देखने में आ रही हैं। कतिपय संघों में तो मंत्र गढ़ने वाले सुनार-कारीगर नियमित रूप से काम करते हुए देखे जा सकते हैं। हमारी अल्पबुद्धि में यह नहीं आता कि ये महान आत्माएं जिनमें धन अर्जन करने की अपार क्षमताएं हैं, अपनी इस देव दुर्लभ काया को दिगम्बर जैन साधु की कठोर चर्या से क्यों कष्ट पहुंचाते हैं तथा क्यों नहीं जैन कुलोत्पन्न चन्द्रा स्वामी के समान बिना किसी मुखौटे के विशुद्ध तांत्रिक-मांत्रिक बनकर देह सुख भोगते हुए भी करोड़ों-अरबों का व्यापार कर यश कीर्ति तथा राजनैतिक प्रभाव का सुख भोगते, या फिर जैन धर्म का मर्म समझ कर भी अपने को श्रमणाचार के योग्य न समझ कर जैन कुलोत्पन्न ओशो रजनीश की तरह अतुल वैभव सम्पन्न हो कर समस्त सांसारिक सुख भोगते हुए भी भगवान कहलाने लगते या फिर समयसार के अनन्य अध्येता हो कर मूल दिगम्बर जैन आम्नाय को ही सही समझ कर स्थानक वासी जैन साधु की पदवी त्याग कर केवल स्वामी (गृह त्यागी, ब्रह्मचारी पदवी धारी) बने रह कर अध्यात्म रस में सराबोर होकर अपने को व अपने भक्तों को बौद्धिक विलास से अनुरंजित करने वाले कान्ह जी स्वामी के पदचिन्हों पर चलते हुए अपार यश कीर्ति भी प्राप्त करते और मायाचारी बन कर दिगम्बर जैन साधु का मुखौटा भी उन्हें न लगाना पड़ता।

हमारे एक युवाचार्य श्री ने गत महावीर जयन्ती के सुअवसर पर भगवान महावीर के दीक्षा कल्याणक तथा सती चन्दनबाला से आहार ग्रहण करने का मंच पर इतना सुन्दर जीवन्त अभिनय किया जिसे देखकर पंडाल में बैठा विशाल

जन समूह मुग्ध हो गया। हमने तो एक ब्रह्म गुलाल मुनि की कथा सुनी थी जिन्होंने राज आज्ञा से राज सभा में दिगम्बर जैन मुनि का सफल अभिनय प्रस्तुत किया था किन्तु वे फिर अपने घर वापस नहीं गए। राज सभा से ही सीधे वन में जाकर गुरु से दिगम्बर मुनि दीक्षा ले ली। ब्रह्म गुलाल मुनि तो अभिनेता से मुनि बने पर हमारे ये युवाचार्य श्री तो आचार्य से अभिनेता बन गए। हमारी तुच्छ राय में तो यदि ये आचार्य श्री ऐसे आगम विरुद्ध कार्य न करके अपनी दीक्षा छोड़ कर फिल्म इंडस्ट्री में चले जावें तो निश्चय ही एक दिन सुपर स्टार बन सकते हैं। निस्संदेह हमारे कई पूज्य मुनिराजों एवं आर्यिका माताओं में अपार प्रतिभा है, किन्तु भाग्य की विडम्बना कि उन्होंने अपनी प्रतिभा को चमकाने के लिए कदाचित परिस्थितिवश गलत क्षेत्र का चयन कर लिया जिससे हमारे जैसे सामान्य जनों को भी उंगली उठाने का कुअवसर मिला।

हमने कुछ वर्ष पूर्व एक आर्यिका शिरोमणी जी के श्री मुख से उनके प्रवचन में सुना था कि "श्रावक लोग हम साधुओं में तो दोष निकालते हैं पर अपनी ओर नहीं देखते कि उनका आचार कितना गिर गया है। जैसा खाए अन्न तैसा होए मन.... हम तो अपने आलोचकों को खुला निमन्त्रण देते हैं कि वे हमारा जितना त्याग ही करके दिखाएं।" हमें इन आर्यिका शिरोमणी जी का यह तर्क बहुत सटीक लगा, पर हमारी अल्प बुद्धि में यह बात नहीं आई कि यदि ये आर्यिका जी ११ प्रतिमाधारी छुल्लिका के नियमों का ही निरतिचार पालन कर रही होतीं तो भी उनकी मोक्ष मार्ग की साधना में कदाचित कोई कमी नहीं आती। हां, आर्यिका या मुनि के पद पर जो सम्मान प्रतिष्ठा मिलती है, पूजा आरती होती है, उससे कदाचित वंचित रहना पड़ता। ऐसी सोच वाले हमारे ये साधु साध्वी यह भी भूल जाते हैं कि श्रावक के आध्यात्मिक विकास की तो कई सीढ़ियां होती हैं। मात्र देव शास्त्र गुरु पर श्रद्धान रखने वाला भी श्रावक होता है तथा २२ अभक्ष्य, सप्त व्यसन एवं रात्रि भोजन का त्यागी, नित्य षट् आवश्यक कर्म करने वाला, प्रोषधोपवासी, १२ व्रतधारी भी श्रावक होता है। शास्त्र प्रवचन, स्वाध्याय तथा सद्गुरु की प्रेरणा पाकर श्रावक अपनी रुचि एवं क्षमता के अनुसार मोक्ष मार्ग की साधना के पथ पर शनैः शनैः अग्रसर होता है, जबकि जिन शासन में मुनि-आर्यिका का पद मोक्ष मार्ग के साधकों का सर्वोच्च पद होता है। वे हमारे आदर्श हैं, हमारे धर्म गुरु हैं, और जाहिर है कि आदर्श में किसी प्रकार की गिरावट सहन नहीं की जाती।

आज भी कतिपय पूज्य आचार्य, मुनिराज तथा आर्यिका माताएं शुद्ध निरतिचार श्रमणाचार का पालन करते हुए इस धरा को अपनी चरण रज से पवित्र कर रहे हैं। उन अल्प परिग्रही, सरल परिणामी, तपोनिष्ठ महान आत्माओं में हमें जीवन्त तीर्थंकर के दर्शन होते हैं। उनके प्रति हम पूर्ण श्रद्धावनत हैं तथा भूधर कवि के साथ सुर में सुर मिलाकर कहते हैं कि—

वे गुरु जहं पग धरे, जग में तीरथ जेह।
सो रज मम मस्तक चढ़े, भूधर मांगे येह ॥

किन्तु जिस प्रकार एक मछली सारे तालाब के जल को गन्दा कर देती है, यहां तो दिगम्बर जैन श्रमणाचार के निर्मल सरोवर को गदला करने वाली मछलियों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। हमारी निर्मल निरतिचार चरित्र के पालन करने वाले महामुनियों, आचार्यों एवं आर्यिका माताओं से सविनय प्रार्थना है कि वे अपने प्रवचनों में बहु परिग्रही, अर्थ संचयी, मंत्र तंत्र के व्यापार में लिप्त यश लोलुपी, भवाभिनन्दी मुनि-आर्यिका वेशधारियों की खुलकर भर्त्सना करें तथा श्रावकों को प्रेरणा दें कि ऐसे मुनिवेश को कलंकित करने वालों को सहन न करें, उनका बहिष्कार करें। हम जानते हैं कि ये निर्मल चरित्र के धारी साधुगण न तो उन आगम विरुद्ध क्रियाओं का अनुमोदन करते हैं, न ही ऐसी क्रियाओं में रत मुनिवेशधारियों को श्रद्धास्पद ही मानते हैं। यह हो सकता है कि ढाई हजार वर्ष पहले बने जैन श्रमणाचार के कुछ नियम आज की परिस्थितियों में अप्रासंगिक या अव्यवहार्य हो गए हों तथा उनमें कुछ छूट देना समय की मांग हो। हमारे निर्मल चरित्र के धनी सर्वाधिक पूज्य मुनिराजों को खुले मन से उन नियमों में समुचित संशोधन परिवर्द्धन प्रस्तावित कर श्रावकों को सूचित कर देना चाहिए।

वर्ष १९८१ में श्रवणबेलगोला में गोम्मटेश्वर भगवान बाहुबली के सहस्राब्दि महामस्तकाभिषेक महोत्सव के सुअवसर पर जुटे शताधिक महाव्रती साधुओं की धर्म परिषद ने श्रमणाचार में व्याप्त होते जा रहे शिथिलाचार तथा श्रमणों में बढ़ती जा रही अनुशासनहीनता पर गहरी चिन्ता व्यक्त करते हुए उसकी रोकथाम के लिए दीक्षा गुरुओं को एक सर्व सम्मति से पारित प्रस्ताव द्वारा कुछ महत्वपूर्ण अनुदेश जारी किये थे। किन्तु उच्छृंखल प्रवृत्ति के तथा शिथिलाचार के आदी साधुओं पर इसका कोई प्रभाव पड़ा हो, ऐसा नहीं दीखता।

(शेष पृष्ठ १२ पर)

अनेकान्तवाद–व्यवहारिक जीवन में

—श्री रमा कान्त जैन

अनेकान्तवाद शब्द "अनेक", "अन्त" और "वाद"—इन तीन शब्दों का समुच्चय है। "अनेक" का शाब्दिक अर्थ एक नहीं अर्थात् एक से अधिक, किन्तु दो ही नहीं, "अन्त" का अर्थ सिरे अथवा पक्ष या पहलू अथवा गुण, और "वाद" का अर्थ बतलाने वाला होता है। "अनेकान्तवाद" जैन दर्शन का विशिष्ट सिद्धान्त माना जाता है और "स्याद्वाद" उसकी चिन्तन प्रक्रिया तथा उसकी अभिव्यक्ति के प्रकार के रूप में जुड़ा हुआ है। प्राय: जैनेतर चिन्तक और दर्शन शास्त्री अनेकान्तवाद और स्याद्वाद को जैन दर्शन का पर्यायवाची मानते और समझते हैं। जैन दार्शनिकों और चिन्तकों ने तो इनकी विशद व्याख्या की ही है, जैनेतर चिन्तकों ने भी इनके सम्बन्ध में चिन्तन-मनन किया है और जैन दर्शन के इस सिद्धान्त की और उसकी इस प्रक्रिया की सार्थकता एवं उपादेयता के सम्बन्ध में अपने-अपने ढंग से अपनी प्रतिक्रिया समय-समय पर व्यक्त की है। यहां अनेकान्तवाद और स्याद्वाद के शास्त्रीय पक्ष की चर्चा करना अभीष्ट

(पृष्ठ ११ का शेष)

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रि परिषद ने गत वर्ष अपने पिछले अधिवेशन में दिगम्बर जैन श्रावक और साधु संस्था में चरणानुयोग प्रतिपादित मर्यादाओं के प्रति दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही उपेक्षा वृत्ति पर गंभीर चिन्ता व्यक्त करते हुए शिथिलाचार की, विशेषकर श्रमणाचार में स्खलनता की, रोक-थाम के लिए सर्व सम्मति से एक विस्तृत प्रस्ताव पारित किया था। चूंकि शास्त्रि परिषद से जुड़े अधिकांश विद्वान मुनि-भक्ति के लिए प्रसिद्ध संस्था श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन (धर्म संरक्षिणी) महासभा से भी जुड़े हैं, हमें आशा बंधी थी कि इन विद्वानों के सहयोग से महासभा से जुड़े समाज नेता एवं श्रेष्ठि गण दिगम्बर जैन मुनि संस्था में तेजी से पांव पसारते जा रहे शिथिलाचार की रोकथाम में अपनी अंध भक्ति पर अंकुश लगा कर अपने सुविवेक का परिचय देंगे। किन्तु अभी तक तो ऐसा कुछ हुआ नहीं प्रतीत होता। भवाभिनन्दी मुनियों-आर्यिकाओं की बाढ़ प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। श्रमण संस्था के शुद्धिकरण के लिए अब कदाचित् किसी पूज्य आचार्य श्री को ही सिंह गर्जना के साथ भगवत् कुन्दकुन्दाचार्य के रूप में अवतरित होना पड़ेगा।

—अजित प्रसाद जैन

नहीं है, अपितु यह देखना और समझना है कि अनेकान्तवाद का सिद्धान्त और उससे जुड़ी स्याद्वाद प्रक्रिया हमारे दैनंदिन जीवन में कितनी प्रासंगिक, संगत, सार्थक और उपादेय है।

हम सब जानते हैं हर सिक्के के दो पहलू होते हैं और सिक्के के एक ही पहलू का ज्ञान पूरे सिक्के के बारे में हमारी जानकारी पूर्ण नहीं करता। हर नदी के दो छोर होते हैं, हर सड़क के दो सिरे। एक छोर और एक सिरे को देखने और जानने मात्र से भले ही हम दूसरे छोर और सिरे की कल्पना, उसका अनुमान, अपने मन में कर लें, किन्तु क्या हम दावे के साथ कह सकते हैं कि दूसरे छोर और दूसरे सिरे के बारे में हमारी कल्पना या अनुमान सर्वथा सत्य ही हैं, उसमें यथार्थ से कुछ भिन्नता नहीं हो सकती। सिक्के के दोनों पहलू देखना तो सरल और सहज है, किन्तु किसी लम्बे राजमार्ग को एक सिरे से दूसरे सिरे तक या किसी विशाल नदी को उसके मुहाने से उसके सागर में विलीन होने तक के सम्पूर्ण यात्रा-पथ को देख पाना सभी के लिये सहज और संभव हो पाता है, कहना कठिन है। इसीलिये उक्त राजमार्ग या विशाल नदी के किसी अंश मात्र को देखने से उसकी सम्पूर्णता के बारे में हमारा ज्ञान, जो प्रायः कल्पना या अनुमान या उनके बारे में सुनी-पढ़ी जानकारी पर आधारित होता है, सही भी हो सकता है अथवा वास्तविकता से कुछ हटकर।

यही बात अन्य विषयों में भी बहुत कुछ लागू होती है। कहते हैं कि भगवान महावीर ने कहा था, "हम सब जो कुछ हैं स्वयं अपने विचारों की परिणति हैं और जो कुछ हम सोचते हैं या चिन्तन करते हैं वह हमारे अपने विश्वासों और अनुभवों से, जो स्वयं हमसे अथवा अन्य प्राणियों से अथवा दोनों से सम्बन्धित हैं, जुड़ा हुआ है। केवल उन सबका, सहानुभूतिपूर्ण परीक्षण और विवेकपूर्ण विश्लेषण पर आधारित, तटस्थ अध्ययन तीव्र विरोध की स्थिति में भी एक दूसरे को समझने और सुखद समन्वय करने में सहायक होता है।" इसीलिये भगवान महावीर का मानना था, "यदि कोई व्यक्ति किसी वस्तु के अनेक पक्षों में से अन्य सब पक्षों की उपेक्षा करते हुए या उन्हें अस्वीकार करते हुए उसके केवल एक पक्ष से चिपका रहे तो वह कभी सत्य की अनुभूति नहीं कर सकता।" इसलिये सत्य की अनुभूति के लिये अनेकान्त दर्शन और उसकी स्याद्वाद पद्धति को जानना आवश्यक है।

"स्यात्" का अर्थ यहां 'शायद' नहीं है जो प्रायः लोग समझ लेते हैं और इस पद्धति को अनिश्चिततावादी मान लेते हैं। स्याद्वाद पद्धति के प्रसंग में

"स्यात्" का अर्थ 'एक प्रकार से', 'एक दृष्टिकोण से' अथवा 'एक विशिष्ट दृष्टिकोण या पक्ष से, देखा जाना है। यह सत्य को, वास्तविकता को, जानने की एक प्रक्रिया है।

अनेकान्तवाद और स्याद्वाद है क्या, यह समझने के प्रसंग में पुराना कहीं पढ़ा और सुना हुआ एक कथा दृष्टान्त हमारे स्मृति पटल में घूम रहा है। छह दृष्टिहीन व्यक्ति, जो कदाचित् मित्र थे, एक बार कहीं जा रहे थे। रास्ते में एक जगह उन्हें एक हाथी खड़ा मिल गया। उसे वह देख तो सकते नहीं थे, अतः पूरी तरह नहीं जानते थे कि वह कौन है और कैसा है ? उन व्यक्तियों में से एक की टक्कर हाथी की देह से हो गई और उसे लगा यह कोई दीवार की तरह ऊंची और मजबूत चीज है। दूसरे व्यक्ति का हाथ हाथी के पांव से छू गया; अपने हाथों से उसके पांव टटोलने पर उसे ऐसा लगा कि यह कोई खम्भा है। तीसरे व्यक्ति के हाथ में हाथी की सूंड आई और उसे छूने पर उसे लगा जैसे वह कोई पेड़ की डाल हो। चौथे व्यक्ति को उसकी पूंछ हाथ लगी और उसे टटोलने पर उसे लगा यह कोई मोटा रस्सा है। पांचवे व्यक्ति के हाथ उसके कान से जा लगे और उसे वह कान एक बड़े पंखे या सूप की तरह लगे। छठे व्यक्ति का हाथ उसके दांत पर जा पड़ा और वह उस दांत को नुकीला भाला समझ बैठा। अब छहों मित्र उस हाथी के बारे में अपना-अपना अनुभव और निष्कर्ष एक दूसरे को सुनाने लगे। पहले ने उसे दीवार, दूसरे ने खम्भा, तीसरे ने पेड़ की डाल, चौथे ने मोटा रस्सा, पांचवे ने सूप और छठे ने भाला करार दिया। वे छहों व्यक्ति उस हाथी नामक जानवर के किसी एक अंग को छूने मात्र से उसके बारे में बनाई गई अपनी-अपनी धारणा को सही और दूसरों की धारणा को गलत बताते हुए आपस में झगड़ने लगे। इतने में एक दृष्टिवान बुद्धिमान व्यक्ति उधर से गुजरा। उसने जब झगड़े का कारण जानना चाहा और उन छहों व्यक्तियों की बात सुनी तो उसे सब माजरा समझ में आ गया। वह बोला, 'ऐ मूर्खों, क्यों आपस में लड़ रहे हो ? यह तो हाथी है। तुम छहों का कहना अपनी-अपनी जगह आंशिक रूप से सही है। तुममें से हर एक ने इसके केवल एक अंग को छूकर ही उसके बारे में अपनी-अपनी धारणा बनाई है, सम्पूर्ण हाथी को छूकर नहीं। इस हाथी की देह दीवार की तरह उँची और मजबूत है, इसके पांव खम्भे की तरह हैं, इसकी सूंड पेड़ की डाल की तरह है, इसकी पूंछ मोटे रस्से की तरह है, इसके कान सूप की तरह हैं और इसके दांत नुकीले भाले की तरह हैं। इसलिये आपस में लड़ने की कोई बात नहीं है, हाथी

को जानने-समझने के लिए तुम सबको अपने-अपने व्यक्तिगत अनुभवों को मिला कर समन्वित कर देने की आवश्यकता है।' उस व्यक्ति के इस प्रकार समझाने पर वे छहों व्यक्ति अपनी मूर्खता पर हंसने लगे और उन्होंने उनकी आपस की कलह समाप्त करा देने वाले उस विज्ञ पुरुष के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त की।

स्याद्वाद प्रक्रिया को अपनाने वाले व्यक्ति की कार्यशैली कैसी होती है, इसको एक प्राचीन जैन आचार्य ने दूध बिलोने वाली उस ग्वालन का दृष्टांत देकर समझाया था जो मथनी के चारों ओर लिपटी डोरी (नेति) का एक सिरा अपने दाहिने हाथ में और दूसरा सिरा बाये हाथ में पकड़े होती है और दूध बिलोने की प्रक्रिया में बारी-बारी से एक सिरे को कसकर खींचती रहती है और दूसरे को ढील देती रहती है, किन्तु इतनी नहीं कि दूसरा सिरा उसके हाथ से छूट ही जाय। उसी प्रकार स्यादवाद प्रक्रिया को अपनाने वाला व्यक्ति किसी विषय पर दृष्टिकोण विशेष से चिंतन करते, पक्ष प्रस्तुत करते और उस पर बल देते समय इस बात को भी ध्यान में रखता है कि उस विषय के अन्य पक्ष उसकी दृष्टि से सर्वथा ओझल न रह जायें।

सत्य सापेक्ष होता है। एक व्यक्ति जो दूसरों की दृष्टि में भले ही सज्जन हो, दूसरों का उपकार करने वाला हो। यदि उससे हमारा कभी कोई उपकार हुआ है तो हमारी दृष्टि में उपकार करने वाला होता है, जबकि दूसरों की दृष्टि में दुर्जन माना जाने वाला व्यक्ति यदि हमारा कोई भला करता है, तो वह हमारी प्रशंसा का पात्र बन जाता है, अतः किसी व्यक्ति के बारे में हमारी निन्दा या प्रशंसा उसके द्वारा हमारे साथ किये गये व्यवहार सम्बन्धी स्वानुभव पर आधारित होती है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि हमारे साथ कभी किसी के द्वारा किये गये किसी एक कृत्य के कारण कोई व्यक्ति सर्वथा निन्दनीय या प्रशंसनीय ही हो जाय। आधुनिक युग में हुए महान वैज्ञानिक एवं दार्शनिक आइन्सटीन द्वारा प्रतिपादित प्रख्यात सापेक्षता सिद्धांत की पूर्व कल्पना जैन आचार्यों ने की थी। उनके अनेकान्तवाद और स्याद्वाद में सापेक्षता का सिद्धांत निहित है। यदि हम एक बर्फ से शीतल जल से भारी बाल्टी में अपना एक हाथ और उसी के साथ-साथ अपना दूसरा हाथ खौलते हुए पानी की बाल्टी में डुबोयें और चन्द क्षणों के बाद दोनों को एक साथ निकाल कर गुनगुने पानी की तीसरी बाल्टी में डालें तो हमें लगेगा कि शीतल जल से निकाले हाथ को उष्णता और खौलते पानी से निकाले हाथ को सिहरन मालूम हो रही है जबकि उस तीसरी बाल्टी का पानी तो मात्र गुनगुना है। अतः हाथों को तीसरी बाल्टी में लगने वाली उष्णता

और शीतलता तो उनकी पूर्व स्थित की अपेक्षा से है, और दोनों ही सही हैं। स्वयं आइन्स्टीन ने भी अपने सिद्धांत को इस प्रकार के सामान्य उदाहरण देकर समझाया था कि यदि कोई व्यक्ति किसी रूपसी से एक घन्टा बात करे तो उसे लगेगा कि अभी एक मिनट ही बीता है जबकि यदि उसे एक मिनट के लिए जलते तवे पर बैठा दिया जाय तो उसे लगेगा कि घंटा भर बीत गया।

किसी की प्रतीक्षा करते समय हमें लगता है कि घड़ी की सुई रूक गई है और किसी रूचिकर कार्य में संलग्न होने पर घंटों बीत जाने पर भी समय का कोई भान नहीं रहता जबकि घड़ी की सुई दोनों ही समय एक-सी गति से बराबर चलती रही है।

आधुनिक युगीन चिन्तक, टोकियो के प्रो० हाजिमा नकमुरो ने भी सापेक्षवाद पर चिन्तन करते हुए यह प्रश्न उपस्थित किया था, "यदि पूर्व पूर्व है और पश्चिम पश्चिम है, तो पूर्व कौन है और पश्चिम कौन है? क्योंकि भारत जो अमेरिकावासियों के लिए पूर्व है चीनी एवं जापानियों के लिये सदा पश्चिम रहा है और रहेगा।' ह्वेन सांग ने अपनी भारत भ्रमण डायरी को 'पश्चिम का यात्रा वृत्तान्त' संज्ञा दी है।

कहने का अभिप्राय यह है कि सत्य की पूर्ण अनुभूति के लिए अनेकान्तवाद और स्याद्वाद से उद्भूत सापेक्षवाद को समझाने की और अपने पूर्वाग्रह से मुक्त रहने की भी आवश्यकता है।

हम लोग अक्सर यह सोचते हैं कि तर्क के द्वारा सत्य को जान लेंगे, दूसरे को समझा देगें और उसे प्रतिष्ठित कर देगें। परन्तु सर्वथा ऐसा नहीं है। प्राय: तर्क के द्वारा हम सत्य को नहीं जानते, नहीं समझते, अपितु अपने सीमित ज्ञान पर आधारित अपने पूर्वाग्रहों को पुष्ट करने का और अपने बड़प्पन को उजागर करने का प्रत्यन करते हैं। तर्क देते समय हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि हमारा तर्क किस काम आ रहा है, सत्य को जानने के लिए अथवा जो कुछ हम जानते हैं उसे सत्य सिद्ध करने के लिये? यदि हमारे तर्क में हमारी स्वयं की प्रतिष्ठा का प्रश्न नहीं है, अपना सम्मान बढाने का उद्देश्य कहीं है, अहंकार को पुष्ट करने का प्रयत्न नहीं है और हम पूर्वाग्रह और कदाग्रह से ग्रसित नहीं हैं, तो हमारा तर्क दूसरों को मान्य हो सकता है, किन्तु यदि हमारा अभिप्राय दूसरा है, हम अपनी मान-प्रतिष्ठा हेतु अपने अहंकार का पोषण करने के लिए तर्क द्वारा बलात दूसरों को अपने पूर्वाग्रह मनवाना चाहते

हैं तो हमारा तर्क दूसरों को सहज स्वीकार्य नहीं होगा, क्योंकि कोई भी व्यक्ति अपने को हमसे कम ज्ञानी मानने को एकाएक तैयार नहीं होगा। इसमें केवल हमारी प्रतिष्ठा ही नहीं, साथ ही उसकी अप्रतिष्ठा भी निहित है। अतः तर्क देने में वाचक का अभिप्राय महत्वपूर्ण होता है। यदि हम किसी वस्तु को या व्यक्ति को सही-सही जानना चाहते हैं, तो यह आवश्यक है कि हम अपने पूर्वाग्रहों से ही न बंधे रहें। ज्ञान का भण्डार असीम है, अनन्त है, और हमारी स्वयं की जानकारी बहुत ही सीमित। हमें दूसरों की जानकारी का लाभ लेना उचित है।

किसी भी वस्तु के विभिन्न स्वरूप होते हैं, वह विभिन्न धर्मी होती है। जैसे उदाहरण के लिए कोई कुर्सी है, वह कुर्सी तो है ही, उसमें लकड़ी भी लगी है, लोहे की कील भी लगी है, नायलान के धागे की बेंत भी बुनी हुई है, बढिया पालिश भी की हुई है और उस पर मखमल लगी गुदगुदी गद्दी भी रखी हुई है—वह इन सबका समुच्चय है, मात्र लकड़ी की कुर्सी नहीं है। फिर भी यह देखना है कि उस पर बैठने वाला, विराजमान होने वाला कौन है? जो उस कुर्सी पर बैठता है कुर्सी प्रायः उसी के नाम से जानी जाती है, जबकि वह व्यक्ति स्वयं कुर्सी नहीं होता।

इसी प्रकार संसार में, समाज में और परिवार में किसी एक व्यक्ति के ही भिन्न-भिन्न व्यक्तियों से भिन्न-भिन्न सम्बन्ध होते हैं। किसी एक सम्बन्ध को लेकर उसके पूर्ण व्यक्तित्व का बोध होने का दावा करना कहां तक संगत होगा? वह व्यक्ति एक ही समय में पुत्र भी है, पति भी है, चाचा-ताऊ-फूफा-मामा-मौसा-जीजा-साला-मित्र-अफसर-मातहत आदि सब कुछ है, किन्तु सबके लिए सब कुछ नहीं है। माता-पिता की दृष्टि में पुत्र, भाई-बहनों की दृष्टि में भाई, पत्नी की दृष्टि में पति, सन्तान की दृष्टि में पिता, भतीजे-भतीजियों की दृष्टि में चाचा या ताऊ, साले-सालियों की दृष्टि में जीजा और अपने बहनोई की दृष्टि में स्वयं साला, साले के बच्चों के लिये फूफा, बहन के बच्चों के लिए मामा, साली के बच्चों के लिए मौसा, मित्र की दृष्टि में मित्र, मातहतों की दृष्टि में अफसर और अपने अफसरों की दृष्टि में स्वयं मातहत, और देशवासियों की दृष्टि में मात्र नागरिक होता है। यदि व्यापार करता है तो अपना माल बेचते समय विक्रेता और दूसरों का माल खरीदते समय खरीदार होता है। इस प्रकार प्रायः हर व्यक्ति एक साथ कभी-कभी परस्पर विरोधी सम्बन्ध ओढ़े रहता है।

हम यदि किसी व्यक्ति को एक ही या कुछ विशिष्ट रूपों में ही जानते हैं, तो यह आवश्यक नहीं है कि हम उसे सब प्रकार से जानते ही हों।

जो कुछ हम देखते हैं, सुनते हैं या पढते हैं, क्या हम दावे के साथ कह सकते हैं कि वह सब सत्य ही है? क्या हमारी दृष्टि धोखा नहीं खा सकती है? देखकर जो हम समझ रहे हैं, अनुमान लगा रहे हैं, क्या वह मिथ्या नहीं हो सकता? ऐसी तो अनेक घटनायें पढने - सुनने में आई हैं जब किसी ने दूर से कोई दृश्य देखकर उसे पूर्णतया समझे बिना अपने मन में कोई मिथ्या भ्रम पैदा कर लिया और उस गलतफहमी का निवारण करने का उपाय न कर उसका शिकार हो न केवल स्वयं मनस्ताप का भागी हुआ, अपितु अपने परिवारजनों को भी दुखी कर बैठा अथवा कल्पनीय अपराध या कुकृत्य कर बैठा। अत: जो कुछ हमारी दृष्टि देखती है वही सब सही है, आवश्यक नहीं है।

ऐसा भी होता है कि कभी हम कहीं ऐसी जगह पहुंचें जहां दो लोग पहले से आपस में बात कर रहे हों। उनकी बातचीत का कोई अंश हमारे कानों से टकराया नहीं कि हम ठिठक गये और बिना पूर्वापर मालूम किये उस टुकडे के आधार पर पूरी बात का ताना-बाना अपनी कल्पना से बुनने लगे और फिर उसके आधार पर उन बात करने वालों के प्रति अपने मन में धारणा बनाने लगे, अपने मन को कुण्ठाग्रस्त करने लगे या उनके प्रति भ्रामक प्रचार करने लगे। ऐसी घटनाओं का भी सर्वथा अभाव नहीं है। परस्पर सम्बन्धों में अधिकांश गलतफहमियों के मूल में हमारे कानों द्वारा सुने किसी वार्तालाप के यत्किंचित वे टुकड़े होते हैं जिनका पूर्वापर जानने का यत्न किये बिना हम मिथ्या भ्रान्ति के शिकार हो जाते हैं। अत: अपने कानों का भी सत्य जानने के सम्बन्ध में पूरा भरोसा नहीं किया जा सकता।

भले ही आंखों और कानों के बीच चार-चार अंगुल का फासला है, यदि इन दोनों का समन्वयात्मक प्रयोग किसी घटना के दृश्य या श्रव्य को समझने के लिए करें और अपनी विवेकबुद्धि का प्रयोग, किसी निष्कर्ष पर पहुंचने के पूर्व, घटना के पूर्वापर को समझने के लिए करें, तो कदाचित हम मिथ्या भ्रान्तियों का शिकार होने और पारस्परिक सम्बन्धों में कटुता लाने से बच सकें।

गुरूजी जिनसे हमने अध्ययन किया और पुस्तक प्रणेता विद्वान जिनकी पुस्तक पढ़कर हमने ज्ञानार्जन किया हमसे अधिक ज्ञानी हो सकते हैं, इसमें विशेष सन्देह की बात नहीं, किन्तु क्या वह सर्वज्ञ हैं इस प्रश्न का उत्तर देना

कदाचित् कठिन है । जैसा ऊपर कहा जा चुका है, ज्ञान का भण्डार असीम है, अनन्त है । अपनी-अपनी क्षमता और रुचि के अनुरूप सभी लोग अधिकाधिक ज्ञानार्जन का प्रयास करते हैं, किन्तु ज्ञान के सम्पूर्ण भण्डार को पा लेना किसी एक व्यक्ति या किन्हीं व्यक्तियों की सामर्थ्य में हो, यह दावा तो शायद ही कोई कर सके ।

आज संसार का बड़े से बड़ा वैज्ञानिक यही कहता है कि परमाणु की सम्पूर्ण प्रक्रिया के बहुत थोड़े से अंश को जान पाया है । समस्त प्रक्रिया को जानना तो बहुत दूर की बात है, उसके निकट पहुंचने की सामर्थ्य भी उसमें नहीं है । एक परमाणु के जितने स्वरूपों और गुणों को वह विश्लेषित कर पाया है उससे बहुत अधिक अवशेष है । उनको जानने में उसका ज्ञान कहीं न कहीं लड़खड़ा रहा है । परमाणु के सभी स्वरूपों और गुणों को वह कभी जान भी पायेगा इसकी सम्भावना प्रतीत नहीं होती है । ऐसा कहकर वह वैज्ञानिक एक परमाणु के समक्ष अपना विनम्र भाव व्यक्त करता है ।

आज की दुनिया में समाचार पत्रों, पत्र-पत्रिकाओं, आकाशवाणी और दूरदर्शन जैसे जनसंचार माध्यमों का बोलबाला है । ये ही किसी घटना, व्यक्ति, वस्तु आदि को जानने-समझने के लिए, किसी वस्तु आदि के प्रति हमारी रूचि जाग्रत करने अथवा उससे घृणा या वितृष्णा उत्पन्न कराने हेतु हमारे मन-मस्तिष्क को संचरित करने वाले महत्वपूर्ण आँख-कान हैं । किन्तु उनसे प्राप्त सामग्री क्या सर्वथा विश्वसनीय ही है ? यह सही है कि जो कुछ इन माध्यमों द्वारा हमारे मन-मस्तिष्क की भोजन थाली में परोसा जा रहा है सब कुपथ्य नहीं है, किन्तु सब पूर्ण पथ्य और सत्य भी नहीं है । किसी एक ही घटना के बारे में विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में भिन्न-भिन्न प्रकार से वर्णन प्रस्तुत किया जाता है । वर्णन की भिन्नता होते हुए भी घटना का सत्यांश उनमें निहित होता है । जिसने जिस दृष्टि से उस घटना को देखा, जाना या समझा उसने उसका उस रूप में वर्णन किया । अत: उस वर्णन की, अपने मन को प्रिय न लगने पर भी, आप सर्वथा मिथ्या कहकर उपेक्षा नहीं कर सकते, उसको सर्वथा अस्वीकार नहीं कर सकते । सत्य की तह में पहुंचने के लिए उक्त घटना के बारे में दूसरे पक्षों को भी जानना-समझना उचित होगा ।

बुराइयों में भी अच्छाइयां हैं और अच्छाइयों में भी बुराइयां हैं । साथ ही इन दोनों का अस्तित्व और महत्व अन्योन्याश्रयी है । देखिये, कैसा विरोधाभास

है, किन्तु है सत्य । तभी तो किसी भी विषय के पक्ष और विपक्ष को लेकर वाद-विवाद प्रतियोगितायें कराई जाती हैं, लेख आदि लिखे जाते हैं ।

प्रसिद्ध पाश्चात्य चिन्तक हीगल भी कहता हैं, "प्रत्येक वस्तु के भीतर ही उसका प्रतिपक्ष निहित है । किसी वस्तु की कल्पना, उसके प्रतिपक्ष की कल्पना किये बिना, करना असंभव है । किसी भी तर्क की हर एक स्थापना की प्रतिस्थापना है । प्रत्येक प्रश्न के दोनों पक्षों में सत्य निहित है । सत्य दुतरफा है ।" इसीलिए भिन्नता में एकता और एकता में भिन्नता के दर्शन हमें होते हैं ।

कहते हैं कि महाज्ञानी शंकराचार्य ने भी जैन दार्शनिकों के इस स्याद्वाद सिद्धान्त का खण्डन किया था । इसकी चर्चा करते हुए संस्कृत और वेदान्त के प्रकाण्ड पण्डित स्वर्गीय महामहोपाध्याय डा० गंगा नाथ झा ने यह टिप्पणी की थी, "जब मैंने शंकराचार्य द्वारा इस स्याद्वाद के खण्डन को पढा तो मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि स्याद्वाद सिद्धान्त बहुत ही ठोस है और वेदान्त के आचार्य इसे समझने में असफल रहे । मुझे विश्वास है यदि शंकर ने जैन ग्रन्थों का अध्ययन करने का कष्ट उठाया होता तो वह इस सिद्धान्त की आलोचना करने की जहमत न उठाते ।"

जहां तक मैं समझता हूं, किसी भी धर्मोपदेशक ने हिंसा करने की सलाह नहीं दी है, किन्तु इतिहास साक्षी है और हम सब जानते हैं कि जितना खून खराबा धर्म के नाम पर होता रहा है और आज भी होता है उतना कदाचित् किसी और विषय को लेकर नहीं । यूं तो धर्म की विभिन्न व्याख्याएं की गई हैं, किन्तु जैसा कि विधावारिधि इतिहास-मनीषी स्वर्गीय डा० ज्योति प्रसाद जैन का भी मानना था, "धर्म तो वस्तुतः जोड़ने वाली वस्तु है, तोड़ने वाली नहीं । वह पारस्परिक सम्बन्धों में प्रेम और सद्भाव उत्पन्न करने वाला अमोघ उपाय है । वह व्यक्ति के अपने सामान्य कर्तव्यों के सम्यक् निर्वहन में उसका सहायक है और उसे सद्नागरिक बनने की प्रेरणा देने वाला है । किसी भी तथाकथित धर्म में मूलतः कोई अन्तर नहीं है । कुछ विशिष्ट अवधारणाओं और मान्यताओं को छोड़कर, सभी धर्मों में सदाचरण पर प्रायः समान रूप से बल दिया गया है । केवल अपने स्वार्थवश हमने भिन्न-भिन्न लेबिल अपनी-अपनी दुकानें चलाने के लिये लगा रखे हैं । अतः किसी धर्म विशेष की प्रशंसा और दूसरे धर्मों की निन्दा या उपहास उचित नहीं कहा जा सकता है ।"

धार्मिक विश्वास और परम्पराएं तो व्यक्तिगत आस्था के विषय हैं, इससे धर्म के व्यवहारिक पक्ष, जो सदाचरण है, पर कोई अन्तर नहीं पड़ता। दूसरों के द्वारा अपने धर्म की निन्दा सुनने पर झगड़े हो जाते हैं।

आपसी झगड़ों का एक कारण यह भी होता है कि जो मैं कह रहा हूं वही सत्य है, अन्य नहीं। अगर यह मान लें कि जो मैं कह रहा हूं वह भी सत्य है और जो दूसरा कह रहा है उसमें भी सत्य हो सकता है, तो शायद झगड़ा मिट-जाये और सद्भावपूर्ण वातावरण बना रहे।

यह सब कहने का आशय इतना ही है कि आज के जगत में भी सत्य की तह में जाने के लिये और परिवार, समाज व देश में सद्भावपूर्ण वातावरण बनाने के लिये अनेकान्तवाद सिद्धान्त को अपनाना अभीष्ट और उपादेय है। यह सिद्धान्त मनुष्य को विनम्र और जिज्ञासु बनाता है। यहां विनम्रता से आशय सामान्य शिष्टाचार की विनम्रता से नहीं है, अपितु अनेकान्त दर्शन को आत्मसात् करने और अपने ज्ञान की सीमाओं का आकलन करने के उपरान्त हृदय से उद्भूत विनम्रता से है। कोई व्यक्ति जब यह देखता है कि ज्ञान अनन्त है और उसकी तुलना में उसका अपना ज्ञान अत्यल्प है तो एक सहज विनम्रता का भाव उसके अन्तस् में जागृत होता है और यह विनम्रता व्यक्ति के लिए अपने कार्य-क्षेत्र में सफलता का सोपान बनती है और उसकी ज्ञान पिपासा को बढ़ाती है। साथ ही उसे दूसरों की बात या दूसरा पक्ष धैर्यपूर्वक सुनने-समझने की शक्ति और तब अपना पक्ष या जानकारी सापेक्ष सही रूप में दूसरों के सामने प्रस्तुत करने की प्रेरणा प्रदान करती है तथा सहिष्णुता का भाव मन में जगाती है और परिवार, समाज, देश व विश्व में एक सद्भावपूर्ण वातावरण का सृजन करने में सहायक होती है।

इसीलिए तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर ने भी **तस्स भुवणेकगुरुणोणमो अणेगंतवायस्स**, अर्थात् लोक के उस एक मात्र अप्रतिम गुरू अनेकान्तवाद को नमस्कार किया था।

——

अनेकान्त का उपयोग

—डा० ऋषभ चन्द्र जैन

अनेकान्त का व्यवहारिक जीवन में प्रयोग एक बहुत व्यापक विषय है और निस्सन्देह अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

दार्शनिक जगत ने अनेकान्त को जैनदर्शन का एक पारिभाषिक शब्द मान लिया। जब वह आइन्स्टीन जैसे वैज्ञानिक के हाथ में पहुंचा तो उसने उसे "रिलेटिविटी आफ नालेज", सापेक्षता का सिद्धान्त, कहा। और जब वह विश्व मानवता के परित्राण के लिए एक चुनौती के रूप में सारे संसार के समक्ष प्रस्तुत हुआ तो उसमें से यू.एन.ओ.जैसी संस्थाओं ने जन्म लिया। आज विश्व के किसी भी कोने में यदि किसी प्रकार की अमानवीय घटना होती है तो उसे आकाशवाणी आदि के माध्यम से सारे संसार में फैलते हुए देर नहीं लगती, और चारों ओर से उस घटना की भर्त्सना गूंज उठती है। विश्व स्तर पर लोक व्यवहार में अनेकान्त के प्रयोग का इतना बड़ा उदाहरण दूसरा नहीं हो सकता। जैन आचार्यों ने तो यह बात बहुत पहले ही कह दी थी कि संसार का सर्वथा कोई कार्य अनेकान्त के बिना सम्भव नहीं है। इसीलिए वह सारे संसार का अद्वितीय गुरू है। ऐसे गुरू को हमारे विनम्र प्रणाम हैं—

जेण विणा लोगस्स वि ववहारो सव्वहा न निव्वहइ।
तस्स भुवणेक्क गुरूणो, णमो अणेगंतवायस्स ।।

—समणसुत्तं ४/२१२/१

आचार्य ने यहां लोक का कोई भी व्यवहार अनेकान्त के बिना नहीं चल सकने की बात कही है तो क्या इसे हम यह मान लें कि चोरी, डकैती, कालाबाजारी, गुण्डागर्दी आदि सभी काम जैनदर्शन के अनेकान्त के सहारे ही चलते हैं। ऐसा सोचना या कहना तो ठीक वैसा ही होगा जैसे कोई युवक अपनी सुन्दर पत्नी की प्रशंसा में आचार्य मानतुंग के भक्तामर स्तोत्र का यह पद्य कहे—"तावन्त एव खलु तेप्यणवः पृथिव्याम्, यत्ते समानमपरं नहि रूपमस्ति", अर्थात् हे देवी जी, जिन परमाणुओं से आपके सौन्दर्य का निर्माण हुआ है, वे परमाणु संसार में उतने ही थे, इसी कारण आपके सदृश अन्य किसी का रूप नहीं है।

इससे अन्दाज लगाया जा सकता है कि किसी अच्छे से अच्छे तथा उपयोगी सिद्धांत का दुरूपयोग किस हद तक किया जा सकता है। पिछले कुछ सहस्र वर्षों में अनेकान्त की जो व्याख्याएं हुई हैं और जिस तरह से उसका उपयोग आजीविका या स्वार्थ सिद्धि के लिए किया जा रहा है उससे इस सिद्धांत की महत्ता और लोक व्यवहार में उसकी उपयोगिता की ओर उपेक्षा का भाव आता गया है। जब कि इसी सिद्धांत को यह नाम भले ही न दिया गया हो, पर सारा संसार हर क्षेत्र में उसकी महत्ता को स्वीकार, करता जा रहा है, तथापि ऐसे उदाहरण भी हैं कि इस सिद्धांत का दुरूपयोग भी किया जाता रहा है।

वास्तव में हमें देखना यह है कि हम अपने दैनन्दिन जीवन में अनेकान्त का व्यवहार करते हैं या नहीं, और यदि करते हैं तो उसका सही अर्थों में कितना उपयोग करते हैं और गलत अर्थों में कितना। यदि इतना ही पता चल जाय तो बहुत बड़ा समाधान निकल सकता है।

प्रश्न यह है कि जब तक अनेकान्त के स्वरूप को ठीक-ठीक नहीं समझ लिया जाय तब तक व्यवहारिक जीवन में उसका समुचित प्रयोग हो ही नहीं सकता। कहा जाता है कि तीर्थंकर महावीर की दिव्य-ध्वनि में सर्व प्रथम जो तीन शब्द निकले वे इस प्रकार थे--"उप्पन्नतेहि विनसेहि धुवेहिवा", अर्थात प्रत्येक वस्तु चाहे वह जड़ हो या चेतन उसमें प्रतिक्षण उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यता अर्थात नित्यता पायी जाती है। आगे आचार्यों ने इसे ही सत् का स्वरूप बताया--"उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य- युक्तं सत्"। आचार्य समन्तभद्र ने एक उदाहरण द्वारा इस बात को स्पष्ट किया है। वह इस प्रकार है--

घट मौलि सुवर्णार्थी नाशोत्पादस्थितीस्वयम्।
शोक प्रमोदमाध्यस्थ्यं जनो याति सहेतुकम्॥

अर्थात् स्वर्ण के घट का, स्वर्ण के मुकुट का और केवल स्वर्ण का इच्छुक मनुष्य क्रमशः स्वर्ण घट का नाश होने पर शोक को, स्वर्ण-मुकुट के उत्पन्न होने पर हर्ष को और दोनों ही अवस्थाओं में स्वर्ण की स्थिति होने से माध्यस्थ भाव को प्राप्त होता है; और यह सब सहेतुक होता है।

यद्यपि इस पद्य की व्याख्या में भट्ट अकलंक और आचार्य विद्यानन्द ने अपने ग्रन्थों में बात को बहुत स्पष्ट कर दिया है फिर भी यदि इस बात को

आम आदमी को समझना हो तो उसे यही कहना पड़ेगा कि भाई तुम्हें सोने से मतलब है या उसके विभिन्न आभूषणों से। सोना किसी भी आभूषण के रूप में रहेगा तो भी उसका जो मूल्य है वह तो अपने स्थान पर बना ही रहेगा। इसलिए ऐसा व्यक्ति जिसकी रुचि मात्र स्वर्ण की सुरक्षा में है, उसे रंच मात्र भी इस बात का दुःख नहीं होता कि उसका बेटा सोने की चैन बनवा रहा है या बेटी कंगन।

ठीक यही बात वस्तु के स्वरूप के विषय में है। प्रत्येक वस्तु की वर्तमान पर्याय निरन्तर नष्ट हो रही है, नयी पर्यायें उत्पन्न हो रही हैं। किन्तु वस्तु का जो वास्तविक स्वरूप है वह ज्यों का त्यों बना हुआ है। इसी बात को आचार्यों ने गुण और पर्याय के रूप में समझाया। यदि किसी से कहा जाय कि सामने यह काला घोड़ा खड़ा है, उसमें से कालापन ले आओ और घोड़ा वहीं छोड़ देना तो क्या यह सम्भव होगा। अर्थात् उस घोड़े में जो कालापन है उसे अलग नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार वस्तु या द्रव्य में गुण रहते हैं जिन्हें उससे अलग नहीं किया जा सकता।

भारतीय दर्शनों में जब इन विषयों को लेकर मनीषियों ने चिंतन किया, तो कतिपय मनीषी पर्यायों की अनित्यता में ही उलझ कर रह गये और कतिपय द्रव्य की नित्यता को ही कूटस्थ मान बैठे। महावीर ने इन दोनों कोरों को मिला कर एक कर दिया और तब यह ऐसा दर्शन बन गया जिसमें नित्यता, अनित्यता और ध्रुवता ये तीनों ही समाहित हो गये। यही अनेकान्त का रहस्य है। जब अनेकान्त लोक व्यवहार में उतरता है तब वह मूर्तमान अहिंसा का रूप बन कर सामने आता है।

निष्कर्ष रूप में हम यही कहेंगे कि अन्दर-बाहर से जीवन में अहिंसा जैसे-जैसे उतरती जायेगी वैसे-वैसे ही हमारे जीवन में अनेकान्त समाता जायेगा। यही व्यवहारिक जीवन में अनेकान्त की वास्तविक उपयोगिता है।

——

सम्मेदशिखर—वस्तुस्थिति

—श्री एम. एल. जैन (अवकाश-प्राप्त जस्टिस)

श्वेताम्बर तेरापंथ के आचार्य किन्तु समस्त जैन दर्शन के मनीषी मुनि महाप्रज्ञ जी अपनी पुस्तक **तेरापंथ** में लिखते हैं—

"जैन तीर्थंकरों की मूर्ति को स्नान, अंगी पहनाना, गहने पहनाना, इत्र-फुलेल आदि लगाना यह वीतरागता की परम्परा नहीं है। हमारी सारी परम्परा वीतरागता की परम्परा, निर्ग्रन्थता की परम्परा, है। जिस तीर्थंकर महावीर ने अपने शरीर पर कपड़ा भी नहीं रखा और उसी की गहनों से लदी हुई प्रतिमा व पूजा का रूप आश्चर्य में डालने वाला है।"

इन विचारों से यह साबित होता है कि आज जिसे हम श्वेताम्बर परम्परा कहते हैं वह दरअसल मिली-जुली एक परम्परा से शुरू हुई जिसमें अचेल व सचेल दोनों ही साधुओं की बराबरी की मान्यता थी। यही कारण शायद है कि मूल श्वेताम्बर आगमों में वस्त्ररहित मुनियों के आचरण का विशद विवेचन है और आबू व पालीताना के तीर्थों में दिगम्बर देवालय विद्यमान हैं किन्तु आगे चलकर इस परम्परा में वस्त्रधारी मुनियों की बहुलता के कारण उसका दिगम्बर अंग लुप्त हो गया। यह मिश्रित परम्परा इस तरह केवल श्वेताम्बर परम्परा रह गई। इस परम्परा में भी दो बड़े भेद हो गए-- एक जो मूर्तियों के भूषण मण्डित स्वरूप का महत्व देने लगा, दूसरा जो मूर्ति-पूजा का विरोधी हो गया। फिर भी मोटे तौर पर जैन जन दिगम्बर व श्वेताम्बर के रूप में बंटा रहा और २५००वें वीर निर्वाण महोत्सव पर प्रतिष्ठित सफल एकता के बावजूद सम्मेदशिखर को लेकर इस एकता में दरार पड़ती नजर आ रही है। अधिक आश्चर्य में डालने वाली जो बात है वह यह कि विवाद में जिस प्रकार की भाषा का प्रयोग हो रहा है वह यह दिखाती है कि हम हमारी शालीन संस्कृति से पीछे हट रहे है।

सुप्रीम कोर्ट में १४-४-१९९४ को आनंदजी कल्याणजी के ट्रस्टियों ने श्वेताम्बर मूर्तिपूजक समाज की ओर से जो याचिका दायर की थी उसमें भी स्वीकार किया है कि पारसनाथ पर्वत स्वयं एक तीर्थ है और भारत के जैन समुदाय द्वारा अनादि काल से पवित्र तीर्थ माना और पूजा जाता है।

इस बात से इंकार करना संभव नहीं है कि सम्मेदशिखर २४ में से २० तीर्थंकरों की निर्वाण भूमि है, मात्र इस एक तथ्य से ही समस्त जैन समुदाय का

पूजा अर्चना का अधिकार इस निर्वाण भूमि में निहित है जो किसी की इजाजत का मुहताज नहीं। इस तीर्थ पर २० चरण अति प्राचीन माने गए हैं। केवल ४ चरण १८६८ में बनाए गए हैं, फिर भी जिस तरह इस पर केवल कुछ श्वेताम्बर मूर्ति पूजक बंधु अपना एकमात्र स्वामित्व व प्रबंध पर एकाधिकार मानते हैं, इसकी कहानी इस प्रकार है—

सन् १९30 के पूर्व की स्थिति

श्वेताम्बर भाइयों ने १५९३ की सम्राट अकबर की और उसके बाद १७६० की मुहम्मद शाह की सनदें व कुछप रवाने पेश कर अपना एकाधिकार साबित करना चाहा किन्तु ये सनद परवाने पहली बार सन् १८६७ में सामने आये और किसी भी अदालत में सच्चे नहीं माने गए तथा नाकाबिल एतबार करार दिए गये। पर्वत पर कब्जा मुकामी नवाबों का था, चलता रहा। १७७४ में कप्तान ब्राउन ने तत्कालीन नवाब को खदेड़ दिया। १७७५-१७७७ में तमाम आरजियात के बंदोबस्त की कार्रवाई हुई। १७८० में मि० चेपमेन ने पालगंज के सुब्रम्ह सिंह को सनद दी जो बाद में कार्नवालिस के बंदोबस्त (Settlement)(१७९३) के वक्त राजा पालगंज के नाम कर दी गई और इस तरह राजा पालगंज तीर्थं की देखभाल समस्त जैन समुदाय के लाभ के लिए करते रहे। १८५८ में सेनीटोरियम बनाने की तजवीज हुई और १८६० में जगह का चुनाव किया गया और पर्वत की पश्चिमी श्रेणी पर एक सेनीटोरियम बनाया गया जो चार साल बाद १८६८ में PWD को दे दिया गया और कुछ हिस्सा उसका राजा पालगंज ने खरीद लिया। १८६१ में राजा झरिया, नवागढ़ और पालगंज के दर्मियान कब्जे का झगड़ा चला। इसमें राजा पालगंज का दावा था कि पारसनाथ शिखर उनको इस शर्त पर मिला हुआ था कि राजा तीर्थ और यात्रियों की रक्षा करेगा।

१८६५ में एक दावा चला जो पूरन चद गोलेछा, मेनेजर सितम्बरी सोसायटी, के नाम से जेवरात आदि के चढ़ावा की वसूली के हक के लिए किया गया जो खारिज हो गया किन्तु अपील में १४-१-१८६७ के फैसले में पर्वत पर मंदिरों के चढ़ावे पर श्वेताम्बर कोठी का हक माना गया। १८६७ में राजा पालगंज ने भी चढ़ावे की बाबत इस्तकरार हक का दावा किया जो पहले डिक्री हुआ पर अंतत: अपील में २५-६-१८६९ को खारिज हुआ। परन्तु फिर भी विवाद शांत नहीं हुआ। १८७२ व १८७८ में राजा पालगंज ने जर्ये इकरारनामा ता० १५-५-१८७२ विल एवज १५००/- सालाना जैन श्वेताम्बर सोसायटी को चढ़ावा रखने का हक दे

दिया। यह इकरारनामा मेनेजर हरकचंद गोलेछा के नाम से हुआ था (जो अंतत: ५-५-१६१६ को हाई कोर्ट से शून्य व बातिल करार दिया गया)। १६-४-१८६८ के बंगाल सरकार के प्रस्ताव से पता चलता है कि उस समय नीचे व ऊपर की दिगम्बर धर्मशालाओं को लेकर आपस में झगड़ा चलता रहा। राजा पालगंज ने १८७४ में एक पट्टा किसी मि० जी.टी. पेपी के हक में चाय की खेती के लिए किया जिसे किसी बोडम ने खरीद लिया और फिर १४ अक्टूबर १८७६ को पर्वत पर उत्तरी बाजू सूअर पालन व मांस का कारखाना खोलने का मुकर्ररी पट्टा मि० बोडम को राजा पालगंज ने दे दिया। मार्च १८८८ में मि० बोडम व उसके साथियों ने सूअर पालना, कत्ल करना व उबालना शुरू किया। जैन श्वेताम्बर सोसायटी की शिकायत पर इस कार्रवाई की मनाही कर दी गई किन्तु २ माह बाद सरकार ने आदेश रद्द कर दिया।

१-१०-१८८८ को जैन श्वेताम्बरी सोसायटी की ओर से पांच श्वेताम्बर बंधुओं ने इस कारखाने के विरोध में दावा दायर किया जो १८-६-१८६० को डिस्ट्रिक जज २४ परगना ने खारिज कर दिया। अपील में उसका फैसला २२-६-१८६२ को कलकत्ता हाईकोर्ट से हुआ जिसमें इस बात को साफ तौर से दर्ज किया गया कि गो पर्वत राजा पालगंज का है जैनों का नहीं परन्तु पर्वत जैन समाज का प्रमुख पवित्र तीर्थ है।

१८८६ में राजा पालगंज ने दिगम्बर कोठी को सीतानाला से कुंथनाथ टोंक तक सीढ़िया बनाने की इजाजत दी और ७०५ सीढ़ियां भी बन गई किन्तु उनमें से २०५ सीढ़ियों को चंद श्वेताम्बर बंधुओं ने नष्ट कर दिया।

१६०० में राजा पालगंज व दिगम्बर जैन लोगों ने श्वेताम्बरों के खिलाफ दावा किया जिसमें सब जज व हाई कोर्ट द्वारा तय हुआ कि रास्ता दोनों सम्प्रदायों का है, और श्वेताम्बर लोगों को पाबंद किया गया कि वे उन्हें सीढ़ियां बनाने से न रोकें, न सीढ़ियां हटाएं। इसी दौरान मौजा पारसनाथ पालगंज की जमींदारी में दर्ज हुआ जिसमें समस्त जैन समाज व हिन्दू समाज को पूजा का हक दिया गया। बाद में हिन्दू शब्द हटाया गया किन्तु प्रबंध श्वेताम्वर समाज का माना गया। इस पर दिगम्बर समाज ने एतराज किया।

१६०२ में श्वेताम्बर समाज चरणों पर मन्दिर बनाकर मूर्तियां प्रस्थापित करने लगे तो दिगम्बर समाज ने दावा किया जिसमें श्वेताम्बर समाज ने आश्वासन दिया कि मूर्तियां स्थापित करने का कोई इरादा नहीं है तो दावा वापस ले लिया गया।

१६०७ में पालगंज रियासत Encumbered Estate घोषित कर दी गई और सरकार की ओर से एक मैनेजर नियुक्त हुआ। इस समय फिर से सेनीटोरियम बनाने का प्रस्ताव हुआ जिसका श्वेताम्बर व दिगम्बर दोनों ने विरोध किया। तब ले० गवर्नर मधुबन आया तो सरकार की तरफ से कहा गया कि पर्वत राजा पालगंज का है अलबत्ता जैन समुदाय को पूजा अर्चना का Prescriptive अधिकार है, ऐसी सूरत में यदि जैन समाज राजा पालगंज का अपने अधिकारों के प्रयोग से रोकना चाहता है तो उसे समाज मुआवजा दे। इस पर जैन समाज ने राजा पालगंज के अधिकारों को खरीदने की पेशकश की तो श्वेताम्बर समाज पीछे हट गया और राजा पालगंज व दिगम्बरों के दरमियान पट्टे के लिए इकरारनामा हुआ किन्तु Lease नहीं लिखी गई अंततः रिकर्ड आफ राइट्स की तैयारी के दरमियान बंगाल सरकार ने यह Lease देने का प्रस्ताव जुलाई १६१० में रद्द कर दिया। इस पर दिगम्बर जैन समाज ने Specific performance का दावा १६१३ में किया जो इस बिनाए पर खारिज हुआ कि इकरारनामा सही पार्टियों के दरमियान नहीं हुआ है।

१६१० में १६०० वाले रेकार्ड आफ राइट्स पर दिगम्बरों के एतराजात का फैसला इस प्रकार हुआ कि तमाम जैन समुदाय को पूजा करने व धर्मशालाओं में ठहरने का अधिकार है जिसमें न कोई दखल करेगा, न किसी की इजाजत की जरूरत होगी अलबत्ता खेवट नं० ७ के मन्दिर व धर्मशाला महाराज बहादुर जनरल मैनेजर श्वेताम्बर सोसायटी के नाम पर दर्ज किए गए तथा बैसाखी पूर्णिमा को संथाल लोगो को पर्वत पर एक दिन शिकार करने का अधिकार सुरक्षित रखा गया।

१६११ में श्वेताम्बर समाज ने इस इंदराज के विरूद्ध दावा किया जो खारिज हुआ।

१६१२ में श्वेताम्बर समाज ने फिर एक दावा दायर किया कि दिगम्बरों को श्वेताम्बरों की इजाजत के बिना मन्दिरों में पूजा व धर्मशालाओं में ठहरने का अधिकार नहीं है। इस विवाद का अंतिम फैसला प्रिवि कौंसिल से ता० ४-१२-१६२५ को हुआ।

१६१८ में राजा पालगंज की ओर से Estate Manager ने श्वेताम्बर समाज के पक्ष में पर्वत बेचने का दस्तावेज तहरीर किया और राजा नवागढ से भी श्वेताम्बर समाज ने एक Lease लिखवा ली। इस बात को लेकर दोनों

सम्प्रदायों में इस बात का तनाजा चला था कि आखिर दिगम्बर समाज के अधिकारों की सीमा क्या है तथा दिगम्बर समाज ने फिर एक दावा सन् १९२० में किया कि श्वेताम्बर समाज जो चंद तामीरात कराने लगा है वे रोकी जाएं। इस विवाद का फैसला भी अंतत: प्रिवि कौंसिल से ता० १२-५-१९३३ को हुआ।

सन् १९३३ के बाद की स्थिति

उपरोक्त प्रिवि कौंसिल के फ़ैसले ता० ४-१२-१९२५ व ता० १२-५-१९३३ के अनुरूप स्थिति इस प्रकार बनी :

१. पर्वत पर ३१ तामारीत हैं जिनमें से २० टोंक व गौतम स्वामी का मन्दिर दिगम्बर व श्वेताम्बर परम्पराओं के विभाजन के पहले की है, ऐसी सब तामीरात मय उन तामीरात के जो श्वेताम्बर समाज ने उन पर बनाई या Improve की दोनों सम्प्रदायों को dedicated हैं।

२. जो ४ टोंक श्वेताम्बर समाज ने बनाए हैं उनमें दिगम्बर जैन पूजा कर सकते हैं श्वेताम्बर समाज की रजामन्दी से।

३. जल मन्दिर में कभी दिगम्बर मूर्तियां रखी हुई थीं परन्तु केवल इस बात से जल मन्दिर पर दिगम्बरों का कोई हक नहीं बनता।

४. श्वेताम्बर समाज द्वारा बनाई गई धर्मशालाओं में उनकी रजामन्दी से दिगम्बर ठहर सकते हैं।

५. यदि इन टोंकों की बाबत कभी दोनों सम्प्रदायों में टकराव हो तो सक्षम अधिकारी उसका फैसला करेंगे।

६. १९१८ से पर्वत का टाइटिल (Title) श्वेताम्बरों को मिल गया।

७. तीन टोंकों में श्वेताम्बरों द्वारा नवीन चरण प्रस्थापित करना गलत है।

नोट : यह ध्यान में रहना चाहिए कि १९१८ से जो अधिकार अन्तरित हुए हैं वे राजा पालगंज के अधिकारों से ज्यादह नहीं हो सकते और यह ऊपर के वर्णन से साफ है कि राजा पालगंज सारे जैन समाज के हित में तीर्थ की रक्षा के लिए पाबंद था।

सन् १९५० के बाद की स्थिति

बिहार लैंड रिफार्मस एक्ट, १९५० (जो ता० २५-९-१९५० से लागू हुआ) के तहत राज्य सरकार ने जर्ये नोटिफिकेशन ता० २-५-१९५३ पारसनाथ पर्वत पर

प्रोप्राइटर (Proprietor) के जो भी थे वे सारे अधिकार अधिगृहित कर लिए। प्रोप्राइटर का नाम १९१८ की दस्तावेज के मुताबिक इस प्रकार दर्ज था—

नगरसेठ कस्तूरभाई व्यक्तिगत हैसियत से समस्त श्वेताम्बर मूर्तिपूजक समाज के प्रतिनिधि प्रेसीडेंट अहमदाबाद की फर्म आनन्दजी कल्याणजी बम्बई।

२१-९-१९५४ के नोटिफिकेशन द्वारा जिला हजारीबाग में सारे Intermediary interest खत्म कर दिए गए। २१-११-१९५४ को बिहार सरकार का नाम दर्ज हुआ और वह रैयत से लगान वसूल करने लगी।

१९५४ में श्वेताम्बर समाज ने मुआवजे के किए दरख्वास्त ता० १७-४-१९५४ को दी। मुआवजा तय हुआ परन्तु लिया नहीं और २२-१०-१९५६ में आनन्दजी कल्याणजी ट्रस्ट की ओर से Annuity के लिए दरख्वास्त दी जो लम्बित चलती रही। इससे पहले आनन्दजी कल्याणजी का नाम किसी अदालती कार्रवाई में नहीं मिलता। १-४-१९६४ के बिहार सरकार के आदेश के तहत गिरिडीह की कलेक्टरेट ने २-४-१९६४ को पारसनाथ हिल पर कब्जा कर लिया तथा १४-४-१९६४ को पहाड़ पारसनाथ को प्रोटेक्टेड जंगल घोषित कर दिया गया।

अधिग्रहण के १० साल बाद १९६४ में सुप्रीम कोर्ट में एस.एल.पी. दायर की गई किन्तु २१-४-१९६४ को वापस ले ली गई और १९६५ में सेठ कस्तूरभाई ने एक इकरारनामा बिहार सरकार से ता० ५-२-१९६५ को किया।

५-८-१९६६ को बिहार सरकार ने एक इकरारनामा दिगम्बरों से भी कर लिया। इस इकरारनामे की खास बात यह हुई कि दिगम्बरों को पहाड़ पर धार्मिक व चेरिटेबुल उद्देश्य से यात्रियों के लिए तामीरात का हक दिया गया।

सन् १९६५ के बाद की स्थिति

उपरोक्त घटनाक्रम से यह बात साफ जाहिर है कि जो कुछ अधिकार अब श्वेताम्बर मूर्तिपूजक समाज श्री संघ को व फर्म आनन्दजी कल्याणजी को प्राप्त हैं उनका एकमात्र आधार ५-२-१९६५ का इकरारनामा रह गया है जो आनन्दजी कल्याणजी के बोर्ड आफ ट्रस्टीज के प्रेसिडेंट सेठ कस्तूरभाई लालभाई भारत के श्वेताम्बर मूर्तिपूजक समाज के प्रतिनिधि की हैसिसत से व बिहार सरकार के दरमियान हुआ। यह इकरारनामा उस अवस्था में किया गया जब सन् १९५४ में दायर की गई Annuity की दरख्वास्त चल रही थी। इस इकरारनामे की मुख्य बातें इस प्रकार हैं—

१. सरकार २२-६-१८६२ के हाई कोर्ट के फैसले से स्वीकृत और बाद में प्राप्त अधिकारों का लिहाज रखेगी।

२. श्वेताम्बर समाज के मन्दिर व पहाड़ी पर धार्मिक प्रतिष्ठानों पर उनका पूरा नियंत्रण होगा और पूजा अर्चना में सरकार का कोई दखल नहीं होगा।

३. मौजूदा मन्दिर और उसके इर्द-गिर्द आधा मील का इलाका छोड़ कर बाकी जंगलों पर महकमा जंगलात का प्रबन्ध रहेगा किन्तु—

(क) श्वेताम्बर समाज को धार्मिक कार्यों के लिए लकड़ी ले जाने का हक रहेगा।

(ख) महकमा जंगलात श्वेताम्बर समाज के पूजा अर्चना के अधिकार, विश्वास, भावनाएं और स्वामित्व में कोई दखल नहीं करेगा।

(ग) बइजाजत सरकार पहाड़ी पर धार्मिक चैरिटेबुल अथवा यात्रियों के लिए इमारत बना सकेंगे।

(घ) उपज जंगलात में ६० प्रतिशत हिस्सा श्वेताम्बर समाज का रहेगा।

(च) महकमा जंगलात पशुवध या मांसाहार नहीं होने देगा।

(छ) जंगलात की व्यवस्था के लिए एक कमेटी होगी, उसमें दो मेम्बर श्वेताम्बर समाज के होंगे।

१९६६ के इकरारनामे से दिगम्बरों को भी वही अधिकार दे दिए गये, केवल दिगम्बरों को उपज जंगलात में कोई हिस्सा नहीं दिया गया।

१९६५ का इकरारनामा गिरिडीह सबोर्डिनेट जज की अदालत में १९६७ व १९६८ में चैलेंज हुआ जिसका फैसला ३-३-१९९० को इस प्रकार हुआ :—

१. आनन्दजी कल्याणजी के ट्रस्ट के सारे अधिकार बिहार राज्य में वेस्ट (Vest) हो गये।

२. १९६५ के इकरारनामे के तहत आनन्दजी कल्याणजी ट्रस्ट का पहाड़ी के शिखर के आधा मील के क्षेत्र पर कब्जा इन्तजाम व नियंत्रण है इसलिए इस क्षेत्र में वे किसी को भी कोई तामीरात करने से रोक सकते हैं।

३. श्वेताम्बरों को जो उपज में ६० प्रतिशत हिस्सा दिया गया था वह नाजायज करार दिया गया। उन्हें केवल एन्यूटी ही मिल सकती है।

४. उपरोक्त आधा मील के क्षेत्र में दिगम्बर—

(१) श्वेताम्बरों की इजाजत के बिना कोई तामीरात नहीं कर सकेंगे ।

(२) पहाड़ पर श्वेताम्बरों द्वारा बनाई गई तामीरात को नष्ट नहीं कर सकेंगे ।

(३) आनन्दजी कल्याणजी की इजाजत से और इजाजत न देने पर दो माह बाद पहाड़ के शिखर पर धर्मशाला, रेस्ट हाउस समुचित स्थान पर बना सकेंगे ।

इस फैसले के खिलाफ हाई कोर्ट बेंच रांची में अपीलें लम्बित हैं ।

एक दूसरे के खिलाफ तौहीन अदालत में मुकदमे चल रहे हैं । श्वेताम्बर समाज के एतराज के कारण रोपवे (Ropeway) नहीं बन पा रहा, न पानी व बिजली की व्यवस्था हो पा रही है ।

इसी दरमियान गौतम स्वामी मन्दिर के पास दिगम्बरों ने एक कच्ची धर्मशाला बनाई जिसे श्वेताम्बर बंधुओं ने तोड़ दिया, उनके खिलाफ फौजदारी मुकदमा चला जिसमें उन्हें नीचे के अदालतों से सजा हुई मगर हाई कोर्ट से बरी हो गए ।

१९७३ में दिगम्बर समाज ने एक दावा दायर किया कि जो आधा मील का क्षेत्र श्वेताम्बरों के नाम दर्ज किया गया है वह गलत है, जो अदम हाजरी में खारिज हो गया । उसके रिस्टोरेशन की दरख्वास्त चल रही है ।

उपसंहार

१. कानूनन स्वामित्व व कब्जा पहाड़ पर राज्य सरकार का है ।

२. श्वेताम्बर व दिगम्बर दोनों के पूजा के हक बराबर हैं, इसलिए प्रबंध में भी दोनों के हक बराबर के होने चाहिएं ।

३. बिहार सरकार को अधिकार है कि जर्ये आर्डर या अधिसूचना उक्त इकरार नामों को कैंसिल कर दे अथवा सारे विवादों का अन्त करने के लिए कानून बना दे जिससे तीर्थ का प्रबंध सर्वत्र संतोष के साथ चल सके ।

४. यह बात कि पर्वत के प्रबंध पर केवल आनन्दजी कल्याणजी का एकाधिकार है न इतिहास, न धर्म, न कानून-किसी भी आधार पर सही नहीं

है; दरअसल श्वेताम्बर मूर्तिपूजक समाज भी तो सारे श्वेताम्बर समाज का प्रतिनिधित्व नहीं करते ।

५. अपने पूजा आदि के अधिकारों के कारगर उपयोग व संरक्षण के लिए यह जरूरी है कि दोनों परम्परा के लोगों का तीर्थ के प्रबंध में भी बराबर का हिस्सा हो, जैन समाज की एकता के लिए भी इससे अधिक हितकर और क्या हो सकता है? इससे भी बढ़ कर बात यह होगी कि श्वेताम्बर समाज के ज्ञानी, धनी, मानी लोग स्वयं इस विषय में पहल करें और महावीर के अनुयायियों की एकता को टूटने न दें ।

[**नोट**:— आनन्दजी कल्याणजी के नियम सम्वत् २०२५ (१९६८ ए. डी.) (दृष्टव्य-ट्रस्ट से उपलब्ध गुजराती में **आनन्दजी कल्याणजी नो इतिहास**) के अनुसार—

१. आनन्दजी कल्याणजी किसी व्यक्ति के नाम नहीं हैं क्योंकि जैन श्री संघ आनन्द देने वाला और कल्याण करने वाला है इसलिए इस नाम से एक फर्म की स्थापना की गई। सन् १८८० में अखिल भारतीय मूर्तिपूजक श्रावक संघ ने इस फर्म का एक संविधान बनाया। बॉम्बे पब्लिक ट्रस्ट एक्ट १९५० के तहत इसको रजिस्टर कराया गया। कब कराया गया नहीं पता चलता ।

२. इसमें ट्रस्ट की जो संस्थाएं दिखाई हैं उनमें सम्मेदशिखर का नाम नहीं है।

३. इसमें सब ट्रस्टी अहमदाबाद के ही हो सकते हैं ।

४. इसकी प्रतिनिधि सभा में जो प्रतिनिधि मेम्बर हैं, उसमें सम्मेदशिखर क्षेत्र का कोई प्रतिनिधि नहीं है ।]

———

बुन्देली जैन कवि श्री चन्दनन्द

—श्री कुन्दन लाल जैन

बुन्देलखण्ड जहां आल्हा, ऊदल, पन्ना और छत्रसाल जैसे वीर जवानों और बहादुरों की वीर प्रसवा जन्मभूमि रही है वहीं केशव, भूषण, देवीदास, चन्दनन्द, ईसुरी, छगन, लल्ले, मरजाद प्रभृति अनेकों प्रतिभाशाली कवियों की साहित्यिक स्थली भी रही है तथा देवगढ़, खजुराहो, अहार, पपौरा, सेरोनजी जैसे कला तीर्थ भी इसी बुन्देलभूमि को सुशोभित कर रहे हैं, ऐसे श्रेष्ठ प्रदेश के एक कवि चन्दनन्द की एक श्रेष्ठ रचना "चेतावनी-पच्चीसी" के आधार पर कवि के सम्बन्ध में कुछ जानकारी प्रस्तुत कर रहे हैं।

हमारे हस्तलिखित पाण्डुलिपि संग्रह में हमें कवि चन्दनन्द के दो दोहों और पच्चीस कवित्तों वाली एक पाण्डुलिपि प्राप्त हुई है, जिसकी लम्बाई १८ सेमी. तथा चौड़ाई १४ सेमी. है। इसमें ७० पत्र हैं, प्रत्येक पंक्ति में १८-२० अक्षर हैं। इस पर "चेताउनी" शब्द मात्र लिखा है जो "चेतावनी" शुद्ध शब्द का बिगड़ा हुआ रूप है। इसमें संस्कृत व्याकरण के नियमानुसार 'व' का 'उ' सम्प्रसारण होकर "चेताउनी" रूप रह गया है। वैसे बुन्देली भाषा में 'व' का 'उ' या 'ओ' के रूप में प्रयोग देखा गया है। जैसे 'इटावा' को 'इटाओ' 'रखान' को 'रखाउ' आदि। इस रचना में केवल पच्चीस कवित्तों का ही संग्रह है, अतः नामकरण "चेतावनी पच्चीसी" कर दिया है। इन कवित्तो में कवि चन्दनन्द ने संसारी प्राणी को चेतावनी (warning) दी है कि हे संसारी प्राणी इस दुनियां के माया मोह, रागद्वेषादि कुप्रवृत्तियों से विरक्त हो अरहंत प्रभु और सिद्ध प्रभु का सुस्मरण कर उन्हीं की शरण गहो। क्रोधादि कषायों को त्याग आत्म चिन्तन और आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर हो। कवि के सारे कवित्त उपदेश परक और परिपूर्ण चेतावनी से भरपूर हैं। सारे कवित्त अति उच्च कोटि के तथा साहित्यिक सरसता से भरपूर हैं।

प्रस्तुत रचना में कवि ने अपने नाम के अतिरिक्त और कोई भी आत्म परिचयात्मक सामग्री नहीं दी है। पर रचना में प्रयुक्त चौथे छंद की दूसरी पंक्ति में नुहर नुहर(झुकना), १२/३ में दौरि (दौड़कर), १४/२ में आंखि के मुंचे (आंख बंद होना), १७/१ में उवडीवट (उपटन), चुपरि चुपरि (चुपडना), १९/३ में मिस (बहाने), २२/१ में झिरैं कूप (कुएं का किनारा), १६/२ में तिनूका(तिनका-तृण), १६/१ में चेरा चेरी(दास दासी), १८/३ में खेह(धूल),

२४/१ में उकताइ (परेशान) आदि शब्दों की बहुलता से प्रतीत होता है कि कवि चन्दनन्द निश्चित रूप से बुन्देलखण्ड के निवासी थे, पर बुन्देलखण्ड के किस नगर गांव या स्थान के निवासी थे इसका कुछ भी पता नहीं चलता है।

कवि चन्दनन्द जैन धर्मावलम्बी थे यह तो सुनिश्चित ही है। रचना के प्रारंभ में सिद्ध भगवान की स्तुति वंदना इसका प्रबल प्रमाण है। इसके अतिरिक्त छंद आठ की पहली पंक्ति, १५/३ में तथा २५/४ में प्रयुक्त "अरहंत" शब्द भी उनके जैनी होने के प्रबल प्रमाण हैं, इनके अतिरिक्त जैन दर्शन सम्बन्धी मान्यताओं का भी उन्होंने अपनी इस रचना में खुलकर विवेचन किया है।

कवि के रचना काल का भी कोई उल्लेख ढूंढने से भी नहीं मिलता है, पर रचना शैली, उसमें प्रयुक्त वाक्यावली तथा अलंकारिक प्रयोगों से ऐसा अनुमान किया जाता है कि संभवत: कवि चन्दनन्द छत्रसाल महाराज के आश्रित तथा शिवाजी महाराज के प्रिय चहेते कवि भूषण के समकालीन या उनके बाद के रहे होंगें। चौथे छंद की प्रथम पंक्ति में "चिकने चतुर चाव चौरने मिठबोला" इसी छन्द की अंतिम पंक्ति में "ऐते गुणमें कै गुण ए कहन काम के", दूसरे छन्द की अंतिम पंक्ति "होत बात बात ही रह जाती है"। सोलहवे की अंतिम पंक्ति "सु वे हु चरै काठ अरू वेहु चढ़ै काठ रे", आठारहवें की दूसरी पंक्ति "तोकोजो दई है दई कही तू लगावो मति" आदि अलंकारिक वाक्यावाली कवि भूषण के इन पदों की याद दिलाती है "तीन बेर खाती वे बीन बेर खात है", "नगन जड़ाती थी वे नगन जुड़ाती हैं", "कान्ह जिम कंसपर·· सेर शिव राज हैं" आदि शैली से कवि चन्दनन्द की शैली मिलती-जुलती सी है, अत: यह संभव है कि कवि चन्दनन्द कवि भूषण के समकालीन रहे हों या उनके तत्कालीन बाद के रहे हों; अत: अनुमान है कि उनका समय सत्तरहवीं सदी का उत्तरार्द्ध या अठारहवीं सदी का पूर्वार्द्ध रहा होगा।

प्रस्तुत "चेतावनी-पच्चीसी" एक मौलिक कृति है। यह **तित्थयर** (दिसम्बर १९९३) में पृष्ठ २३० से २३५ पर प्रकाशित है।

"चेतावनी-पच्चीसी" की विशेषता है कि इसके प्रत्येक कवित्त में कवि ने अपना नाम अवश्य ही जोड़ दिया है जिससे पाठकों या स्वाध्याय प्रेमियों को इन छन्दों की प्रामाणिकता के विषय में किसी तरह का सन्देह न रहे तथा प्रक्षिप्तता की भी शंका न रहे। तत्कालीन अन्य कवि जैसे रहीम, तुलसी, सूर, रसखान,

(शेष पृष्ठ ३६ पर)

षड्दर्शन संग्रह — परिचय

—श्री एम. डी. वसंतराज

ग्रंथ का नाम कहीं नहीं बताया गया है। परंतु 'निःश्रेयस विषय में सांख्य, सौगत, चार्वाक, योग, मीमांसक और दिगम्बर इन छः दर्शनों में आपस में विवाद है', ऐसे कहकर इन दर्शनों का संग्रह निरूपण करने की प्रतिज्ञा की है। इसी कारण इसको 'षड्दर्शन संग्रह' नाम हमने दिया है।

मैसूर के चीनी मंडि ब्रह्मप्पाजी के सुपुत्र श्री इंद्रकुमारजी ने मुझे अवलोकनार्थ ३१ पत्रों वाला ताडपत्र ग्रंथ १५''×४'' माप का दिया था। ग्रंथ के पहले के २१वें और आगे के पृष्ठ के पहले पत्र पर्यंत एक विषय का ग्रंथ है। शेष साढे सात पत्रों में मंगल और मंगल निमित्त आदि का संग्रह कथन है। तत्पश्चात् 'शास्त्रं कथ्यते' यह कहकर पंचास्तिकाय व षड्द्रव्यों के स्वरूप को संग्रह रूप में दो पत्रों में लिखा है। ३१ पत्रों के अलावा और एक पत्र जो शिथिल हुआ है, उसमें अलग विषय प्रस्तावित है।

(पृष्ठ ३५ का शेष)

दौलत राम आदि ने भी अपनी हर रचना में अपना नाम जोड़ा है। हिन्दी के भक्ति कालीन कवियों की यह एक अच्छी परम्परा रही है जिससे आज हम उन कवियों और उनकी रचनाओं का पता लगा लेते हैं।

हाल ही में चन्द कवि नाम से दो संदर्भ अचानक हाथ लग गये पर यह लिखना पूर्णतया प्रामाणिक नहीं लगता कि यह कवि और कवि चन्दनन्द एक ही हैं अथवा भिन्न-भिन्न। प्रथम संदर्भ तो श्री राधेश्यामजी द्विवेदी करेरा (वर्तमान में शिवपुरी) ने अपने शोध प्रबन्ध "हिन्दी भाषा और साहित्य में ग्वालियर क्षेत्र का योगदान" शीर्षक ग्रंथ के पृष्ठ ४१२ पर अनुवादों के क्षेत्र में चन्दनन्द कवि का उल्लेख किया है और समय १५०६ ई० अर्थात सम्वत १५६३ दिया है, जो शंकास्पद लगता है। दूसरा सन्दर्भ हमारे लेख "सं० १७४० की एक सुधार वादी चिट्ठी" में मिला है जो अब से लगभग ३१ वर्ष पूर्व अक्टूबर १९६३ के **सन्मति संदेश** में प्रकाशित हुआ था। इसमें चन्द कवि ने "कवित्त तेरा पंथ को" शीर्षक रचना द्वारा **अर्धकथानक** और **समयसार** नाटक के प्रणेता पं० बनारसीदास के प्रचलित अध्यात्म पंथ जो आगे चलकर 'तेरा पंथ' के नाम से प्रचलित हुआ था, का विरोध किया था।

ग्रंथारंभ में धर्म की सर्वश्रेष्ठता को निरूपण करने वाले—'माद्यंति द्विरदेन्द्र ··' इस मङ्गल श्लोक का व्याख्यान है। 'टीकाटोकामपेक्षते' कथन के अनुसार व्याख्यान प्रौढतम है, अर्थक्लेश से युक्त है। लेकिन इसके पश्चात जो दर्शनों का निरूपण है वह मनोज्ञ और सरल है। आगे धर्म की सर्वश्रेष्ठता के समर्थन करने का श्लोक है। इसके बाद छः दर्शनों का नाम निर्देशन करके इन दर्शनों का निरूपण किया गया है।

सबसे पहले चार्वाक दर्शन को संग्रह ढ़ंग से निरूपित किया गया है। साधरणतया पुण्य, पाप, परलोक, आत्मा आदि तात्विक अंशों को न मानने वाले चार्वाक की अन्य दार्शनिकों द्वारा कड़ी रूप से निंदा करने की प्रथा है। ऐसे कड़े वचन बोलने वालों में धर्मकीर्ति आचार्य ने—'नास्तिको वराकश्चार्वाक शिश्नोदरपूरणपरायणतात' कहकर अग्रगण्यता पायी है। चार्वाक तत्व विशदीकरण के लिए उल्लिखित दो श्लोक काव्यात्मक हैं। आगे इस चार्वाक तत्व का निराकरण करते हुए जीव, पुण्य, परलोक की यथार्थता को संग्रह रूप से निरूपित किया गया है।

चार्वाक तत्व के बाद बौद्ध तत्व निरूपित है। इसमें पंचस्कंध, निर्वाण, चार आर्य तत्व आदि तात्विकाओं का सरल और संग्रह ढ़ंग से निरूपण किया गया है। आगे सांख्य तत्व का निरूपण है। उस तत्व के अनुसार त्रिगुण-स्वरूप-प्रधान प्रकृति से विकास पानेवाले बुद्धि आदि तत्वों का निरूपण सरल और संक्षेप से किया गया है। सांख्य तत्व के बाद उत्तर मीमांसावलंबित वेदांत तत्व का संग्रह निरूपण है। अद्वैत क्या है, इस तत्व चिंतन के अनुसार मोक्ष स्वरूप और उसका प्राप्ति का उपाय बहुत सरल रूप से निरूपित है। आगे योग तत्व का जो एक भेद वैशेषिक तत्व है, इस तत्व के अनुसार पदार्थ, गुण, निःश्रेयस एवं उसकी प्राप्ति—इन सब का स्वरूप संग्रह रूप से कहा गया है। योग तत्व चिंतन का एक और भेद न्याय तत्व है। इसके निरूपण में सोलह तत्वों के नाम मात्र का निर्देशन है। इसके बाद योग तत्व प्ररूपण करते हुए भक्ति योग, क्रिया योग, ज्ञान योग इन्हीं का अर्थ विवरण और उन मार्गों से मुक्ति पाने का उपाय आदि विषयों का निरूपण है। आगे पूर्वमीमांसक तत्व भेदों में भाट्ट और प्रभाकर सिद्धांतों का संग्रहात्मक निरूपण है। अंतिमतया अनेकांतात्मक तत्व का प्ररूपण है। आत्म स्वरूप मोक्ष व उसकी प्राप्ति का उपाय, सप्त तत्व आदि तात्विकाओं का संग्रहात्मक निपरूण किया गया है। ग्रंथ के अंत में कतिपय श्लोकों में धर्मकीर्ति मुनि के वादित्व

और कवित्व की प्रशंसा है। इन्हीं धर्मकीर्ति के इस ग्रंथ का रचनाकार होने की संभावना प्रतीत होती है। ग्रंथ का समापन—'नमस्तात्तीर्थकृज्जयकीर्तये' उक्ति से होता है।

ग्रंथ का यह जो परिचय दिया गया है उसका उद्देश्य यहां बतलाना आवश्यक है। जैन तर्कशास्त्र का मूल नयवाद है। नयवाद द्वादशांग श्रुत का ही अंग था इस में कोई शंका नहीं है लेकिन जैन तर्क ग्रंथों की रचना करीब चौथी या पाँचवीं शती ईस्वी से होने की संभावना है। हमारे देश में सिद्धांतों की प्रतिष्ठा के निमित्त वाद-प्रतिवाद चलता रहा और इसके द्वारा धर्म ग्रंथों का प्रचार कर प्रतिष्ठापन करने की प्रथा कई शतमानों तक चलती रही। इस तरह वाद-प्रतिवाद करनेवालों को अपने धर्म की तत्व स्वरुप विज्ञता के अलावा हमारे देश के विशेष प्रचार में रहे अन्य सभी दर्शनों में भी निष्णात होना जरूरी था। ऐसे दर्शनों का भेद अनेक होते हुए भी इसमें छः दर्शनों को प्रधानता से स्वीकृति प्राप्त थी। इन छः दर्शनों के अन्तर्गत आने वाले दर्शनों की संख्या के बारे में मतभेद था।

आजकल उपलब्ध षड्दर्शन प्रतिपादक ग्रंथों में श्वेताम्बर जैन पंथ में विशिष्ट रीति से संस्तुत हरिभद्रसूरि जी रचित **षड्दर्शन समुच्चय** अत्यंत प्राचीन और प्रसिद्ध है। इसमें बौद्ध, सांख्य, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, जैन और चार्वाक दर्शन का प्ररूपण है। ग्रंथ नाम 'षड्दर्शन' होते हुए भी इसमें सात दर्शनों का निरूपण है। इसके बारे में ग्रंथकार ही विवरण देते हुए कहते है कि कई दार्शनिकों ने वैशेषिक दर्शन को नैयायिक दर्शन से अभिन्न माना है। इस गणना के अनुसार चार्वाक दर्शन का षड्दर्शनों में समावेश होता है। लेकिन कई दार्शनिक चार्वाक दर्शन को दर्शन के रूप में मानते ही नहीं, इस पद्धति की दृष्टि से वैशेषिक और नैयायिक दर्शन पृथक दर्शन की मान्यता पाकर इन्ही से षड्दर्शनों की पूर्णता हो जाती है।

इस संदर्भ में एक बात और कहना आवश्यक है कि षड्दर्शनों की परिगणना में ब्राह्मण दर्शनिकों की बात अलग ही है। इनके अभिमतानुसार जिन दर्शनों ने वेद प्रामाण्य की मान्यता स्वीकार की है वह दर्शन ही आस्तिक दर्शन हैं। वे हैं न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसा। इन आस्तिक षड्दर्शनों के अलावा चार्वाक, बौद्ध और जैन दर्शनों को नास्तिक दर्शन रूप से ग्रहण किया गया है।

दिगम्बर जैन पंथ में प्रख्यात वादी थे । वे जैनेतर दर्शनों में पाण्डित्य संपन्न थे । स्वामी समंतभद्र जी की दार्शनिक प्रधान कृतियों में से स्तोत्रप्रधान कृति 'स्वयम्भू स्तोत्र' में भी जैनेतर दर्शन संबंधी तात्विक अंशों का कथन करके उनकी संवादिता से जैन तात्विक या अनेकांतात्मक चितन की यथार्थता को बतलाया गया है । जैन दर्शनिक ग्रंथों में सन्दर्भ रूप में जैनेतर दर्शनों की परिचर्चा हुई है । फिर भी हर एक दर्शन को प्रत्येकतया समग्रता रूप से निरूपण करनेवाला हरिभद्रसूरि जी का जो **षड्दर्शन समुच्चय** ग्रंथ है इसी तरह के ग्रंथ दिगम्बर जैन परंपरा में रचित हुए प्रतीत नहीं होते । इस दृष्टि से प्रस्तुत ग्रंथ का महत्व और बढता है । इसके अलावा एक और परिशीलनार्ह अंश है कि— हरिभद्रसूरि कृत **षड्दर्शन समुच्चय** पद्य (कारिका) शैली की संग्रह कृति है । उसमें विशेष प्रचुरता में व्याख्यानकारों की कारिका हैं । उन व्याख्यानकरों ने जैन दर्शन संबंधित कारिकाओं को श्वेताम्बर जैन मतानुसार व्याख्यान किया है परन्तु **षड्दर्शन संग्रह** ग्रंथ गद्यात्मक है और व्याख्या रहित होते हुए भी अर्थ सुलभ ग्रह्य है । इसके आलावा इसमें छठे दर्शन को जो नाम दिया वह 'दिगम्बर दर्शन' है । और एक गमनार्ह अंश यह है कि हरिभद्रसूरि कृत **षड्दर्शन समुच्चय** में उत्तर मीमांसा (वेदांत) दर्शन को निरूपित नहीं किया गया पर **षड्दर्शन संग्रह** में इस वेदांत दर्शन का भी निरूपण है ।

ग्रंथकार ने ग्रंथनाम नहीं बताया है । इसके कारण ग्रंथ को समुचित नाम देना आवश्यक है । ग्रंथ समीक्षा से इस ग्रंथ को '**षड्दर्शन संग्रह**' यह नाम अन्वर्थ होगा ।

ग्रंथारंभ में या बीच में ग्रन्थकार के प्रति कोई परिचयात्मक कथन नहीं है । लेकिन ग्रन्थान्त्य में जो प्रशस्ति है वह इस ग्रन्थकर्ता का ही परिचय होना चाहिए, नहीं तो उस प्रशास्ति की अर्थवत्ता प्रश्नवश हो जाती है । उसमें धर्मकीर्ति मुनिपति की प्रशंसा हैं । वह महावादी हैं, बाद में उनके आगे कोई नहीं ठहर सकता । वह है वादिसिंह, वादीभसिंह प्रभु । उसके समान **आप्तमीमांसा** वृत्तिवेत्ता और कोई नहीं है । वह श्रेष्ठ कवि भी हैं । इस तरह यहां पर वादित्व के प्रचार के साथ संस्तुत जो धर्मकीर्ति मुनि हैं उन्हें ही **षड्दर्शन संग्रह** ग्रन्थ का कर्ता होना चाहिए । इस प्रसंग में और गमनार्ह अंश यह है कि इसी प्रशस्ति के एक श्लोक में अनुक्रम से चार्वाक, बौद्ध, योग, मीमांसक और वैदिकों को धर्मकीर्ति से होने वाली अपजय को सूचित किया गयाहै । **षड्दर्शन संग्रह** में भी चार्वाक आदि

दर्शनों का निरूपण इस प्रशस्ति श्लोक में सूचित क्रम से ही है। अतः यह ग्रंथ धर्मकीर्ति मुनि की ही रचना सूचित होती है।

प्रशस्ति की समाप्ति पर —'नमस्तात्तीर्थकृज्जयकीर्तये' यह वाक्य है। इससे जयकीर्ति नाम के आचार्य धर्मकीर्ति मुनि के दीक्षागुरू या विद्यागुरू होंगे और अपने गुरू को उन्होंने तीर्थंकर समान मानकर नमन किया है। धर्मकीर्ति के परिचयात्मक और एक-दो अंशों को यहां सन्दर्भित करना आवश्यक है।

प्रस्तुत धर्मकीर्ति के **षड्दर्शन संग्रह** में उत्तरमीमांसा-अद्वैत दर्शन का निरूपण है पर विष्टिाद्वैत और द्वैत दर्शनों की कोई सूचना नहीं मिलती है। अद्वैत दर्शन शंकराचार्य से तेजोयुत रीति से पुनः प्रकाशित हुआ। इस दर्शन के बारे में ई.स.८ वीं शती के आचार्य हरिभद्रसूरि ने अपने **षड्दर्शन समुच्चय** में कुछ भी नहीं कहा है। इस कारण से उस समय पर्यन्त अद्वैत दर्शन विशेष व्यापकता नहीं पाया था, ऐसा जानना चाहिए। अतः इस ससय के बाद इस दर्शन के प्रतिपादन ने विशेष महत्ता पाया, ऐसा जानने से धर्मकीर्ति आचार्य लगभग ई. स.८वी शती के बाद के हैं, ऐसा मालूम होता है। इस ही तरह रामानुज से प्रचारित विशिष्टाद्वैत और मध्वाचार्य से प्रचारित द्वैत सिद्धांतों के बारे में धर्मकीर्ति द्वारा रचित ग्रंथ में उल्लेख नहीं है। इस कारण ग्रंथ ई.स.११वी शती से पहले की रचना होना चाहिए। इसके साथ धर्मकीर्ति मुनि के बारे में या इनसे संस्तुत जयकीर्ति आचार्य के बारे में किसी शासन में कोई ऐसे उल्लेख है इस पर विचार करना अवश्यक है। पि.बि. देसाई जी ने अपने Jainism in South India and Some Jaina Epigraphs ग्रंथ में एक जयकीर्ति मुनि का उल्लेख किया है (पृष्ठ : १४२)। यही आचार्य जयकीर्ति देव नाम से भी सूचित हैं (पृष्ठ:१४३)। लेकिन इन आचार्य के साथ धर्मकीर्ति मुनि का कोई संबंध सूचित नहीं है। श्रवणबेलगोल इंद्रगिरि के सिद्धर बस्ती में जो शासन (सं. १०५ ; सं. २५४) है उसमें जिनसेन और गुणभद्र स्वामियों के उल्लेख के बाद नंदि संघ, देसी गण, पुस्तक गच्छ, इंगुलेश्वर वली परंपरा के मुनि संतति बतलाते हुए—"तत्रासन् नागदेवोदय-रवि-जिन-मेघ-प्रभा चंद्रा देव श्री भानुचंद्र, श्रुत, नय, गुण, धर्मादयः कीर्तिदेवाः", ऐसा अनुबद्ध क्रम से सूचित किया गया है। यहां परंपरा नागदेव उदयरवि जिन मेघप्रभा और बाल यति चंद्रांत्य नाम के रूप में बतलाई गई है। इन आचार्यों के नाम—नागचंद्र, देवचंद्र इत्यादि होते हैं। इसी तरह श्रुत, नय, गुण, धर्म, आदि नामकीर्ति शब्द से अंत्य होने की

सूचना है। इन आचार्यों के पूर्णनाम श्रुतकीर्ति, नयकीर्ति, गुणकीर्ति और धर्मकीर्ति हैं। इस प्रकार से धर्मकीर्ति के नाम का उल्लेख हुआ है। इस नाम के आगे और कई मुनियों के नाम का उल्लेख प्रस्तुत हुआ है। इसके साथ जो—'विहितदुरित-भृंगाभिन्नवादीभ शृंग' उक्ति है, यह गमनार्ह है। यहाँ पर जो 'भिन्नवादी शृंग' उक्ति है वह प्रस्तुत धर्मकीर्ति आचार्य की प्रशस्ति से खास मिलती है। यह शासन ई.स. १३६८ का है। इस समय से धर्मकीर्ति आचार्य को कम से कम दस या बारह गुरू-अनुक्रम की काल गणना से पहले के समय का होना चाहिए। इस गणना से इन आचार्य की कालगणना दस या ग्यारह सदी से संयोजित होती है। पूर्वोक्त कथनानुसार इन आचार्य का जीवन काल इसी काल से मिलता है। इस कारण से इस शासन में जिस धर्मकीर्ति का उल्लेख है वह प्रस्तुत **षड्दर्शन संग्रह** के ग्रंथकार का सूचक है, ऐसा समझ सकते हैं।

प्रस्तुत ग्रंथ की प्रमुखता और न्यूनता के बारे में भी यहाँ एक बात कहना आवश्यक है। आजकल जैन तर्कशास्त्र अभ्यास का आरम्भ माणिक्यनंदि मुनिवर्य द्वारा रचित **परीक्षामुखसूत्र** के आलंबन से होता है। **परीक्षामुखसूत्र** बहुत महत्वपूर्ण ग्रंथ है, इसमें कोई विवाद नहीं है। लेकिन बिना व्याख्यान के इस ग्रंथ के सूत्रों का अर्थ समझना दुस्तर है। इसके व्याख्यान ग्रंथ जो **प्रमेयरत्नमाला** आदि हैं वे भी प्रौढ़ है। ग्रंथों में जैन दर्शन के प्रतिपादन के सम्बन्ध में अन्य दर्शनों का भी उल्लेख किया गया है। यहाँ पर अन्य दर्शनों के परिचय के अलावा जैनदर्शन के बारे में जो कुछ कहा गया है,वह स्पष्ट नहीं होता है। इस कारण से जैनदर्शन के साथ इतर दर्शनों का कम से कम स्थूल परिचय देना आवश्यक बन जाता है। इस आवश्यकता को प्रस्तुत **षड्दर्शन संग्रह** भले प्रकार से पूरा करता है। यह इसकी प्रमुखता है। इस ग्रंथ की न्यूनता यह है कि साधारणतया दार्शनिक ग्रंथों में प्रमाण (ज्ञान)और प्रमेय (ज्ञान वस्तु) इन दोनों विषयों का निरूपण रहता है। लेकिन प्रस्तुत **षड्दर्शन संग्रह** प्रधानतया प्रमेय प्ररूपक है। प्रमाण के बारे में विवरण नहीं पाया जाता है।

यह तो प्रसिद्ध विषय है कि वैदिक और श्वेताम्बर जैन आचार्यों ने प्रमुख भारतीय दर्शन ग्रंथों की संग्रह रूप से रचना की है। प्रस्तुत ग्रंथ भी ऐसा ही एक ग्रंथ है जो सरल है, सुलभग्राह्य है और वह एक दिगम्बर जैन आचार्य से रचित हुआ है, ऐसे यह बात दिगम्बर समाज के लिए आदर की बात है।

(इस ग्रंथ का प्रकाशन अभीष्ट है। जो संस्था या सज्जन इसको प्रकाशित करने में रूचि रखते हों, वे कृपया श्री बसंतराज से सम्पर्क कर लें। —सम्पादक)

लोथर वेण्डेल

—डा० रानी मजूमदार

भारतीय विद्या के प्राय: सभी क्षेत्रों में पाश्चात्य देश के विद्वानों का विशेष योगदान रहा है। इन विद्वानों में इंग्लैण्ड, फ्रांस, अमेरिका, हालैण्ड, रूस और जापान आदि देशों के विद्वान हैं। परन्तु इन क्षेत्रों में जर्मन देश के विद्वानों ने जो बहुमूल्य शोध-कार्य और अध्ययन किया है वह विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जैन धर्म दिवाकर हेरमन याकोबी, लिपिशास्त्रज्ञ जॉर्ज ब्यूलर, वॉल्टर शूब्रिग, लुडविग अल्सडोर्फ इत्यादि प्रमुख विद्वानों की श्रृंखला में एक और स्मरणीय विद्वान हैं—लोथर वेण्डेल।

लोथर वेण्डेल का जन्म जर्मनी के होमबैर्ग नामक शहर में हुआ। यहीं उन्होंने अपना बाल्य-काल व्यतीत किया।

सन् १९२७ में लोथर वेण्डेल बॉन विश्व-विद्यालय में अध्ययनरत थे। उन दिनों उस विश्व-विद्यालय में ऑस्ट्रिया के विद्वान प्राफ़ेसर ऑस्कर वाल्जेल जर्मन विभाग के अध्यक्ष थे। इसके अतिरिक्त हेरमन याकोबी भी वहीं संस्कृत के अध्यापक थे। इन्होंने जैन-धर्म पर अनेक महत्वपूर्ण शोध-कार्य किए। बॉन विश्व-विद्यालय में जर्मन तथा फ्रेंच भाषाओं का अध्ययन समाप्त करने के पश्चात् लोथर वेण्डेल सन् १९३०-३१ तक फ्रांस में रहे। सन् १९३२ के पूर्वार्द्ध में वे इटली रहे और उत्तरार्ध में लगभग ६ माह तक लंदन रहे। लंदन में ही पहली बार उन्हें भारतीयों के सम्पर्क में आने का अवसर प्राप्त हुआ। वहीं उनकी भेंट बैरिस्टर चम्पत राय जैन से हुई। लोथर वेण्डेल उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व से अत्यन्त आकृष्ट हुए। तभी से उनके मन में जैन-धर्म के प्रति प्रगाढ़ रूचि उत्पन्न हुई और वे चम्पतराय जैन के शिष्य बन गए। महिमाशाली चम्पत राय जैन को सन् १९१५ में उनके महान् ग्रंथ The Key of Knowledge के लिए बनारस के धर्म-महामण्डल के श्री शंकराचार्य ने 'विद्या-वारिधि' की उपाधि से सम्मानित किया। इसके पश्चात् चम्पत राय जैन सन् १९२२ में लखनऊ में दिगम्बर जैन महासभा के अध्यक्ष पद पर चुने गए।

द्वितीय महायुद्ध के बाद लोथर वेण्डेल सन् १९४४ से १९४९ ई० तक रूस में युद्ध-बन्दी के रूप में रहे। कारागार में रहते हुए वेण्डेल को भी अन्य बन्दियों की भांति बर्फीले घने जंगलों में काम करना पड़ता था। कठिन

परिश्रम के पश्चात् जब वे लौटते थे तब कारागार में ही उनके साथ डा० बिट्नर भी रहे थे। वे कुछ कैदियों को दर्शन पर आधारित भाषण देते थे। वेण्डेल उनके भाषणों को दत्तचित्त होकर सुनते। डॉ० बिट्नर की जैन धर्म के प्रति भी विशेष रूचि थी। अतः वेण्डेल ने उन्हें चम्पतराय जैन के बारे में बताया तथा जैन-धर्म सम्बन्धी अनेक प्रमुख सिद्धांतों की भी उनसे चर्चा की।

तत्पश्चात् कारागार से मुक्त होकर लोथर वेण्डेल स्वदेश लौट गए। वहाँ जाकर उन्होंने १० फरवरी, १९५१ ई० को बॉड-गोडेसबर्ग नगर में चम्पत राय जैन के सम्मान में 'चम्पत राय जैन ग्रन्थालय' स्थापित किया।

सन् १९५३ में लोथर वेण्डेल भारत आए। दिल्ली में रहकर जैन संस्कृत विद्यालय में जैन-धर्म का गम्भीरता पूर्वक सुचारू रूप से अध्ययन किया। इसके बाद वे सन् १९५४ से कई वर्षों तक भारत में ही पिलानी (राजस्थान) में स्थित 'बिरला एजूकेशन ट्रस्ट' में फ्रेंच तथा जर्मन भाषा के अध्यापक रहे। इसके साथ ही वे 'इण्टरनेशनल अकाडमी ऑफ जैन विज्डम एन्ड कल्चर' के विदेशी मामलों के सचिव रहे। वे Voice of Ahimsa नामक पत्रिका के सह-संपादक भी थे। लोथर वेण्डेल ने भारत में अनेक जैन मन्दिरों के दर्शन किए और वे राजस्थान में माउण्ट आबू के दिलवाड़ा जैन मन्दिर तथा दक्षिण भारत के श्रवण-बेलगोला स्थान में विश्व की सबसे बड़ी गोम्मटेश्वर की प्रतिम से सर्वाधिक प्रभावित हुए। उनके विचार से ये दोनों क्रमशः अंहिसा के बाह्य और आंतरिक पक्षों को प्रस्तुत करते हैं। जहां दिलवाड़ा मन्दिर बाह्य पक्ष को प्रस्तुत करता है जो कि लालित्य (grace) प्रधान है; गोम्मटेश्वर की प्रतिमा गाम्भीर्य (majesty) को प्रस्तुत करती है जो कि अहिंसा का आन्तरिक पक्ष है।

इस प्रकार भारतवर्ष में भी लोथर वेण्डेल को प्राचीन जैन संस्कृति का अच्छा ज्ञान हुआ। परन्तु इस सम्पर्क के कारण वे अपनी संस्कृति से दूर नहीं हुए, प्रत्युत उसके प्रति और अधिक गाढ़ानुरक्ति हुई। उन्होंने पूर्वी तथा पाश्चात्य संस्कृतियों का, और विशेष रूप से जैन धर्म के परिप्रेक्ष्य में, गम्भीरता से तुलनात्मक अध्ययन किया।

इन्हीं पूर्वी और पाश्चात्य संस्कृतियों को आधार बनाकर लोथर वेण्डेल ने कई निबन्धों की रचना की। ये निबन्ध Thought, Life and Humanity नामक पुस्तक में संग्रहीत हैं, जिसको द वर्ल्ड जैन मिशन ने अलीगंज, एटा, से १९६६ ई० में प्रकाशित करवाया। इस पुस्तक में लोथर वेण्डेल के आंग्ल भाषा में रचे गए २७ लेखों का संकलन है। (शेष पृष्ठ ४४ पर)

पं० अजित प्रसाद

—श्री कैलाश भूषण जिन्दल

पण्डित अजित प्रसाद का जन्म सूर्योदय के समय बैशाखकृष्ण ४, सम्वत १९३१, तदनुसार १० अप्रैल, सन् १८७४ई ,को अजमेर-मारवाड़ स्थित नसीराबाद छावनी में हुआ था। इनके पिता बाबू देवी प्रसाद भारतीय सेना में कमसरियट गुमाश्ता थे। जब यह छः वर्ष के थे तो इनकी माता श्रीमती मनभावती का १८८१ में देहावसान हो गया। अगले वर्ष इनके पिता ने पुनर्विवाह कर लिया। इनकी विमाता इनसे केवल पाँच वर्ष बड़ी थी। माँ की ममता और वात्सल्य देने के बजाय विमाता ने पिता और पुत्र के बीच में एक दरार पैदा कर दी।

अजित प्रसाद जी की प्रारम्भिक शिक्षा औरमैन स्कूल, रूड़की में हुई। पिता जी के मंसूरी स्थानान्तरण होने पर, अजितप्रसाद जी अपनी दादी के पास दिल्ली चले आए और यहीं आटवें दर्जे तक पढ़े। १८८७ में इनके पिता जी का तबादला लखनऊ हो गया और लखनऊ में आकर इन्होने कैनिग कालेज में नवीं कक्षा मे दाखिला लिया। नवीं कक्षा से लेकर एम०ए०, एल-एल०बी० की उपाधि तक अजित प्रसाद जी निरन्तर कैनिग कालेज में पढ़े, हाई स्कूल, एफ०ए०, बी०ए० सब परीक्षाओं में प्रथम श्रेणी में उर्त्तीण हुए और प्रत्येक वर्ष छात्रवृत्ति पाई। कैनिग कालेज के बेनेट हाल की सम्मान नामावली में १८९३ के सर्वप्रथम स्नातक की श्रेणी में अजित प्रसाद जी का नाम स्वार्णाक्षरों में लिखा है। इसके बाद

(पृष्ठ ४३ का शेष)

लोथर वेण्डेल ने विभिन्न संस्कृतियों का गम्भीरता से अध्ययन किया। इन सभी का जैन- धर्म से तुलनात्लक अध्ययन करके उन्होंने अनेक निबंध लिखे। लोथर वेण्डेल के सभी निबन्धों से यह पूर्णतया स्पष्ट होता है कि वे स्वयं जैन धर्म से अत्यधिक प्रभावित थे। जैन संस्कृति के प्रति अपने इस बहुमूल्य योगदान के कारण लोथर वेण्डेल विद्वत्समाज में चिरकाल तक स्मरणीय रहेंगे। ★

१८८४ में एल-एल०बी० किया और १८८५ में अंग्रेजी में एम०ए०। अजित प्रसाद जी के लॉ के आचार्य लेसली डिग्रूथर और सर एडवर्ड शेमियर थे और अंग्रेजी के एम० जे० व्हाइट।

उन दिनों लखनऊ में उच्च न्यायालय नहीं था। केवल ज्युडिशल कमिश्नर न्यायपालिका के समक्ष अजित प्रसाद जी ने १८८५ से १६१६ तक वकालत की। न्यायपालिका में आसीन न्यायाधीश माननीय जे०डेअस, जी०टी० स्पैंकी, ब्लैनर हैसेट, रोस स्कोट और शेमियर थे। स्कोट साहब अजित प्रसाद जी की वकालत से इतने प्रभावित हुए कि उन्हें १६०१ मे रायबरेली का मुन्सिफ नियुक्त कर दिया। रायबरेली में केवल तीन महीने मुंसफी करने के बाद अजित प्रसाद जी लखनऊ में सरकारी वकील और लोक अभियोजक नियुक्त कर दिये गये।

अजित प्रसाद जी का विवाह केवल १२ वर्ष की आयु में कर दिया गया। उनकी पत्नी श्रीमती मनोहरी देवी उनसे डेढ़ वर्ष छोटी थीं। इनकी पहली संतान सरला देवी १८६० में हुई जब ये केवल १६ वर्ष के थे और एफ० ए० में पढ़ते थे। इतनी अल्पायु में पिता होने पर इनको इतनी लाज आई कि इन्होंने अपनी पत्नी को मायके भेज दिया और जब तक अपनी शिक्षा समाप्त नहीं कर ली उसे वापस लखनऊ नहीं बुलाया। ग्यारह वर्ष तक अखण्ड ब्रह्मचारी रहे। इनकी दूसरी संतान सुमति का जन्म दिसम्बर १६०२ में हुआ। इस प्रकार भाई-बहन में १२ वर्ष का अन्तर था। इसके बाद चार संतान और हुई—तीन पुत्र और एक पुत्री। छः सन्तानों में से अब केवल दो जीवित हैं—दो छोटे भाई। सबसे कनिष्ठ श्री कैलाश भूषण जिन्दल सबसे योग्य और प्रतिभाशाली हैं। इन्होंने जैन धर्म, हिन्दी साहित्य और आयकर अधिनियम पर एक दर्जन पुस्तकें लिखी हैं। आप कई सामाजिक संस्थाओं से जुड़े हैं। सम्प्रति उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रधानमंत्री हैं और भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के उपाध्यक्ष।

कैलाश भूषण जिन्दल केवल १६ महीने के थे जब उनकी माता जी का देहावसान २२ जुलाई १६१८ को हो गया। श्रीमती मनोहरी देवी बहुत धर्म परायण थीं। आसाढ़ १६१८ के अन्तिम सप्ताह में नन्दश्वर द्वीप पूजा विधान के दिनों में, जिनको अठाइयाँ कहते हैं, उन्होंने दो दिन का निरन्तर उपवास किया। उसको "बेला" कहते हैं। तीसरे दिन नियमों की कठिनता के कारण उन्होंने सूखे आटे की चपाती, कोयलों पर अधसिकी, खाकर पानी पी लिया।

उसके कारण हैजा हो गया। डाक्टर ने दवा लिख दी। अजित प्रसाद जी ने स्वत: दवा मिलाकर उसमें पानी मिलाया और निशान बनाकर पीने को दे दी। फिर "पुषरूर्थसिद्धयुपाय" का अंग्रेजी अनुवाद करने में लग गये। जब रोग का आक्रमण बढ़ता गया, और उन्होंने अन्दर जाकर पूछताछ की तो मनोहरी जी ने स्वीकार किया कि उन्होंने दवा का एक निशान भी नहीं पिया, एक-एक करके निशान के बराबर दवा चिलमची में गिराती रहीं क्योंकि उनको सन्देह हो गया था कि दवा डाक्टर के दवाखाने से बनकर आई है। लाचारी में उन्हें मेडिकल कालेज ले जाया गया। पहुंचते-पहुंचते रात हो गई। वहाँ नमक का पानी रग काट कर बेहोशी की दशा में चढ़ाया गया। बुखार चढ़ आया। मगर होश में नहीं आईं। ज्वरताप एक बगल में १०५ और दूसरी में १०६ था। बरफ में भिगोई चादर लपेटी गई। सब उपचार व्यर्थ गये और सूर्योदय से पहले प्राणान्त हो गया। अष्टानिहका पर्व के दिन उनका अन्तिम संस्कार जैन विधि पूर्वक उनके ज्येष्ठ पुत्र सुमति ने किया।

वकालत शुरू करने के समय अजित प्रसाद जी ने परिग्रह परिमाण का अणुव्रत ले लिया था। उनका लक्ष्य एक लाख रु० था। उन दिनों सोने का भाव २० रू० तोला था; आजकल ४,५०० रू० तोला है। उस समय का एक लाख आजकल के २,२५,००,००० के बराबर हुआ। अपनी योग्यता के बल पर अजित प्रसाद जी ने यह धन केवल १६ वर्ष की वकालत में कमा लिया। तत्पश्चात् १९१८ में उन्होंने सरकारी वकील के पद से त्यागपत्र दे दिया।

विमाता से अजित प्रसाद जी को दु:ख मिला था। उस दु:ख से वह अपनी संतान को दूर रखना चाहते थे। अतएव उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया। सरकारी वकालत से वह पहले ही त्यागपत्र दे चुके थे। गृहणी के देहान्त पर सब कानूनी पुस्तकें तथा अस्बाव दो दिन तक नीलाम किया गया। हीवेट रोड पर स्थित अजिताश्रम और शान्तिनिकेतन दोनों कोठियाँ बेच दी गईं। अजित प्रसाद जी अपने दो छोटे बच्चों को लेकर काशीवास के अभिप्राय से बनारस चले गये। बड़े तीन बच्चे पहले से ही वहां छात्रालय में रहते थे। सबसे बड़ी बेटी सरला का १९०४ में ही विवाह हो गया था।

पंडित मदन मोहन मालवीय जी ने अजित प्रसाद जी को काशी विश्व-विद्यालय के धर्म और दर्शन विभाग का मानद नि:शुल्क आचार्य नियुक्त कर दिया। पंडित मदन मोहन मालवीय कट्टर सनातन धर्मी थे और अजित

प्रसाद जी जैन धर्मावलम्बी। दोनों की पटी नहीं। अजित प्रसाद जी को विश्वविद्यालय से त्याग पत्र देना पड़ा और एक ही वर्ष में काशीवास का स्वप्न समाप्त हो गया।

जब अजित प्रसाद जी ने वकालत शुरू की थी, तब वह ७/- मासिक किराये के मकान में गणेशगंज में रहते थे। बाद में उन्होंने यह मकान अपने सहकर्मी वकील मुंशी भगवत सहाय से खरीद लिया था। बनारस से लौटने पर अजित प्रसाद जी ने पुराना मकान खुदवाकर नींव से नया बनवाया और उसका अजिताश्रम नाम रखा। आजकल इसमें उनके दो जीवित पुत्र और एक पौत्र और उनके परिवार रहते हैं। अजिताश्रम गणेशगंज मोहल्ले का लब्ध प्रसिद्ध मकान है और उसकी आज की कीमत एक करोड़ रूपया है।

इसी अजिताश्रम में रहकर अजित प्रसाद जी ने ३० वर्ष तक निरन्तर जैन समाज और जैन धर्म की सेवा की।

बीसवीं शताब्दी के जैन धर्म के रत्नत्रय के नाम इस प्रकार है—बैरिस्टर जगमन्दर लाल जैन, ब्रह्मचारी शीतल प्रसाद और पंडित अजित प्रसाद। इस रत्नत्रय की अन्तिम कड़ी के विषय में सम्पूर्ण ग्रन्थ लिखा जा सकता है। यहाँ उनकी सेवाओं की गणना की जा सकती है:-

१. १९१० में अखिल भारतीय जैन सभा का वार्षिक अधिवेशन जयपुर में हुआ। अजित प्रसाद जी इस अधिवेशन के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। सर्व सम्मति से यह निश्चय हुआ कि एक ब्रह्मचर्याश्रम की स्थापना की जाये। फलतः पहली मई १९११ अक्षय तृतीया के दिन हस्तिनापुर में श्री ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम की स्थापना की गई।

२. २८ सितम्बर १९१२ को दिगम्बर जैन प्रान्तिक सभा का अधिवेशन बम्बई में हुआ। अजित प्रसाद जी इस अधिवेशन के भी अध्यक्ष मनोनीत किए गये। उनका अध्यक्षीय भाषण एक ऐतिहासिक दस्तावेज है।

३. हीवेट रोड स्थित अजिताश्रम में १९१६ दिसम्बर में भारत जैन महामंडल तथा जीव दया सभा के विशाल सम्मिलित अधिवेशन हुए। अजिताश्रम का सभा मंडप सजावट में लखनऊ भर में सर्वोत्तम था। इस सभा में महात्मा गांधी पधारे थे। सभाध्यक्ष प्रख्यात पत्र सम्पादक बी०जी० होर्नीमन थे। वक्ताओं में गाँधी जी, बैरिस्ट विभाकर और एच०एस० पोलक थे। अधिवेशन में

उपस्थिति इतनी थी कि छतों और वृक्षों पर लोग चढ़े थे। सामने की सड़क रुक गई थी। खड़े रहने की भी जगह न थी। अधिवेशन सम्पूर्ण होने पर गाँधी जी अजिताश्रम में पधारे, महिला समाज को उपदेश और आशीर्वाद दिया।

४. १९१३ में श्री इ०एस० मान्टेग्यु, सेक्रेटरी ऑफ स्टेट, लन्दन से भारत इस उद्देश्य से पधारे कि जाँच करके पार्लियामेन्ट को रिपोर्ट करें कि भारतवासियों को क्या वैधानिक सुविधा तथा स्वत्व प्रदान किये जाने उचित हैं। श्वेताम्बर, दिगम्बर, स्थानकवासी आदि सब ने साम्प्रदायिक भाव गौण करके अखिल भारतीय जैन समाज का प्रतिनिधत्व करने वाली एक जैन पोलिटिकल कान्फ्रेन्स नाम की संस्था स्थापित की। राय साहब बाबू प्यारे लाल अध्यक्ष और श्री अजित प्रसाद सेक्रेटेरी निर्वाचित किये गये। १९१७ का कांग्रेस अधिवेशन कलकत्ते में मिसेज बेसेन्ट की अध्यक्षता में हुआ। उसी समय लोकमान्य श्री बालगंगाधर तिलक के सभापतित्व में जैन पोलिटिकल कान्फ्रेन्स का भी अधिवेशन हुआ। वाइसराय और सेक्रेटरी ऑफ स्टेट को जैनियों की ओर से जो आवेदन भेजा गया वह अजित प्रसाद जी ही ने लिखा था।

५. स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी की प्रबन्धकारिणी समिति के अजित प्रसाद जी सदस्य उसकी स्थापना के समय से रहे और अपने काशीवास के समय उसकी देखरेख की।

६. दिगम्बर जैन समाज के दानवीर श्री सेठ मानिकचन्द हीराचन्द, जे०पी०, ने श्वेताम्बर जैन समाज के अत्याचार तथा जैन तीर्थ क्षेत्रों पर अनधिकृत अतिक्रमण के कारण भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी की स्थापना करना आवश्यक समझा। कमेटी का कार्यालय बम्वई की हीराबाग धर्मशाला में खोला गया। अजित प्रसाद जी ने ७ वर्ष तक १९२३ से १९३० तक तीर्थक्षेत्र कमेटी का काम किया। उनके नाम से तीर्थक्षेत्र कमेटी की बही में ४६,०००/- दानखाते में जमा है। अजित प्रसाद जी ने चार मुकदमो की पैरवी की जिनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है: —

(क) **पूजा केस**—७ मार्च १९१२ को बाबू महाराज बहादुर सिंह ने श्वेताम्बर जैन संघ की ओर से, सेठ हुकुमचन्द तथा १८ अन्य भारतवर्षीय दिगम्बर जैन समाज के प्रमुख सदस्यों के विरूद्ध, आर्डर ८ रूल १ के अनुसार सब जज हजारीबाग की कचहरी में नालिस पेश की। मुद्दई का दावा था कि "श्री सम्मेद शिखर जी निर्वाण क्षेत्र स्थित टौंक, मन्दिर, धर्मशाला सब श्वेताम्बर संघ द्वारा

निर्मित हुई। दिगम्बर आम्नायी जैनियों को श्वेताम्बर आम्नाय के विरूद्ध और श्वेताम्बर संघ की अनुमति बिना प्रक्षाल पूजा आदि करने का अधिकार नहीं है; न वह धर्मशाला में ठहर सकते हैं।"

यह मुकदमा साढ़े चार बरस से ऊपर चला। उभय पक्ष का कई लाख रूपया व्यर्थ हुआ। अन्तिम निर्णय सब जजी से ३१ अक्टूबर १९१६ को हुआ।

इस निर्णय के अनुसार ऋषभदेव, बासुपूज्य, नेमिनाथ, महावीर स्वामी चार तीर्थकरों की टौंकों के अतिरिक्त अन्य सब टौंकों में प्रतिवादी दिगम्बरी संघ का प्रक्षाल-पूजा का अधिकार निश्चित पाया गया। दिगम्बरी समाज के यात्री प्रातः जाते हैं, और सूर्यास्त से पहले वापस लौट आते हैं। वह पर्वत राज पर अन्न-जल नहीं लेते, न वहाँ ठहरते हैं, धर्मशाला से उनको कुछ मतलब ही नहीं होता है।

हजारीबाग सबजज के निर्णय के विरूद्ध उभय पक्ष ने उच्च न्यायालय, पटना, और प्रीवी काउन्सिल, लन्दन, में अपील की। उभय पक्ष की दोनों अपीलें खारिज हुई।

(ख) **इंजक्शन केस**—"पूजा केस" के निर्णय के पश्चात् जिसमें श्वेताम्बर समाज को यथेष्ट सफलता नहीं प्राप्त हुई, सम्मेदाचल तीर्थराज के श्वेताम्बराम्नायी प्रबन्धकों ने यह प्रयत्न किया कि श्री कुंथनाथ की टौंक के पास जहाँ से मधुवन के रास्ते से तीर्थ राज की यात्रा प्रारम्भ होती है, एक बड़ा फाटक खड़ा करें, जिसमें यात्रियों को यात्रा के लिये श्वेताम्बर समाज की दया-दृष्टि पर निर्भर रहना पड़े, उस फाटक के पास तलवार बंदूक आदि हथियार बन्द सिपाही भी रक्खे जावें। तीर्थ राज पर बिजली गिरने से पूज्य चरणालय जिनको "टौंक" कहा जाता है टूट जाती हैं और नूतन चरण स्थापना की आवश्यकता होती है। ऐसे नवीन चरण श्वेताम्बर समाज के प्रबन्ध से इस रूप में स्थापित किये गये थे जिस रूप से वह दिगम्बर आम्नायी उपासकों द्वारा पूज्य नहीं थे। अत: फाटक और सिपाहियों के निवासस्थान बनाने को रोकने और अपूज्यचरणों को हटाकर पूजा योग्य चरण चिन्ह स्थापना किये जाने के वास्ते दिगम्बर समाज की ओर से हजारीबाग के सबजज की कचहरी में ४ अक्टूबर १९२० को आर्डर ८ रूल १ के अनुसार नालिश दाखिल की गई।

उभय पक्ष की बहस १८ दिन तक चली और २६ मई १९२४ को दिगम्बरों का दावा खर्चे समेत डिगरी हुआ। उस निर्णय की अपील पटना हाईकोर्ट में

हुई। श्री चरण चिन्ह के विषय में दिगम्बरों की जीत हुई और अन्य विषयों पर श्वेताम्बरी समाज की जीत हुई।

(ग) **श्री राजगृह केस**—राजगृह केस में पारस्परिक समझौता होकर सुलह नामा कचहरी में दाखिल हो गया। दोनों आम्नायों ने आपस में टौंकें बाँट ली।

(घ) **पावापुरी केस**—पावापुरी केस में तालाब के बीच में एक रमणीक मन्दिर है। उसमें भगवान के चरण चिन्ह हैं। चरण चिन्हों के आगे श्वेताम्बरियों ने महावीर स्वामी की प्रतिमा स्थापित कर रखी है। दिगम्बरी पूजा करते समय प्रतिमा को हटा देते थे। इस पर केस चलता रहा। पटना के सबजज की कचहरी से दिगम्बर आम्नाय की जीत हुई। अपील में हाईकोर्ट से भी वह जीते। किन्तु लन्दन में प्रीवी काउन्सिल में अपील की पेशी की खबर श्री चम्पत राय जी को,जो उस समय लंदन में ही थे, नहीं मिली। दिगम्बरियों के बैरिस्टर की नासमझी के कारण उनकी हार हो गई।

७. स्वर्गीय कुमार देवेन्द्र प्रसाद जी ने १६१५ में आध्यात्मिक ग्रंथों के प्रकाशनार्थ आरा में "सेन्ट्रल जैन पब्लिशिंग हाउस" नामक संस्था की स्थापना की। उसी ख्याति प्राप्त संस्था का स्थानपरिवर्तन ब्रह्मचारी शीतल प्रसाद जी के परामर्श और इन्दौर हाईकोर्ट के जज जुगमन्दरलाल जैनी की आर्थिक सहायता से, अजिताश्रम लखनऊ में कर दिया गया। सेन्ट्रल जैन पब्लिशिंग हाउस ने तेरह जैन शास्त्रों का अंग्रेजी में अनुवाद, भाष्य, उपोद्घात और प्राक्कथन छपवाया। यह तेरह प्रकाशन है— **द्रव्य संग्रह, तत्त्वार्थ सूत्र, पंचास्तिकायसार, पुरूषार्थसिद्ध्युपाय, गोमट्टसार-जीवकाण्ड, गोम्टट्सार कर्मकाण्ड, आत्मानुशासन, समयसार, नियमसार, गोमट्टसार कर्मकाण्ड भाग २, परीक्षामुखम्, तत्त्वार्थ सूत्र के पांचवे अध्याय का विशिष्ट विवेचन, जैन धर्म के अनुसार ब्रह्माण्ड**। यद्यपि सभी प्रकाशनों में अजित प्रसाद जी का योगदान रहा, **पुरूषार्थ सिद्ध्युपाय** और **गोम्मटसार कर्मकाण्ड,भाग २,** की सम्पूर्ण टीका उनकी लिखी हुई है। **भावपाहुड** और **आप्त मीमांसा** की टीका भी अजित प्रसाद जी ने लिखी थी। यह उनके जीवनकाल में नहीं प्रकाशित हो पाई। उनके कनिष्ठ पुत्र कैलाश भूषण जी ने **भावपाहुड** को पुन: सम्पादित करके पारसाल छपवा दिया। **आप्त मीमांसा** अभी छपना बाकी है।

८. ब्रह्मचारी शीतल प्रसाद **गोमट्टसार कर्मकाण्ड, भाग २,** के संयुक्त टीकाकार थे। इस टीका को समाप्त करने के लिए वह अजिताश्रम में एक वर्ष

ठहरे । २३ जुलाई १९२६ को वह लखनऊ पधारे । ब्रह्मचारी जी का नित्य देवदर्शन का नियम था । अष्टमी व चतुर्दशी को ब्रह्मचारी जी का प्रोषधोपवास होता था । उस दिन वह सवारी का इस्तेमाल नहीं करते थे । २४ जुलाई १९२६ को चतुर्दशी थी । ब्रह्मचारी जी पैदल दर्शन करने यहियागंज गये और पैदल ही वापस आये । गरमी के मौसम में उनका इस प्रकार परिश्रम करना अजित प्रसाद जी को बहुत खटका । २५ जुलाई को इतवार था । उस दिन वह बाराबंकी गये और वहाँ से एक प्रतिष्ठित मूर्ति ले आये । उसी दिन अजिताश्रम में जिनबिम्ब स्थापित करके पूजन, भजन, आरती हुई । ब्रह्मचारी जी ने शास्त्रोंपदेश दिया और इस प्रकार पूजन-आरती, शास्त्र सभा का नित्यक्रम अजिताश्रम में जारी हो गया ।

२७ जुलाई को अजिताश्रम में चैत्यालय की नींव खुदनी प्रारम्भ हो गई । पहली अगस्त को नींव की पहली ईंट ब्रह्मचारी जी ने जमाई । १६ नवम्बर से १८ नवम्बर तक मंत्र के आठ हजार जप होकर वेदी प्रतिष्ठा हुई । चौक पंचायत ने ब्रह्मचारी जी से आग्रह किया कि अजिताश्रम चैत्यालय के लिये मूर्ति पंसद कर लें और बाराबंकी की मूर्ति वापस करा दें । ब्रह्मचारी जी ने दो मूर्तियां पसन्द कीं और उन दो प्रतिष्ठित मूर्तियों को लाकर विराजमान किया गया । बाराबंकी की मूर्ति वापस कर दी गई । एक मूर्ति श्वेत पाषाण की पद्मासन, सुन्दर आकृति, करीब ८०० वर्ष की प्रतिष्ठित है । वह चन्द्रप्रभु भगवान की है । दूसरी मूर्ति अत्यन्त प्राचीन है । यह पीतल व अष्टधातु की पार्श्वनाथ की है । ऐसी अर्द्धपद्मासन मूर्तियाँ उत्तर भारत में देखने में नहीं आती हैं । यह दोनों मूर्तियाँ चौक के मन्दिर से १२ जनवरी १९२७ को ब्रह्मचारी जी के साथ जाकर बहुत से लोग अजिताश्रम लाये और मंत्र का जप करके चैत्यालय में विराजमान करके मज्जन, अभिषेक, पूजन किया गया ।

अजिताश्रम चैत्यालय को स्थापित हुए अब ६५ वर्ष हो गये है । अमीनाबाद गणेशगंज चारबाग के सब जैन भाई यहां दर्शन करने आते हैं । दशलाक्षणी और निर्वाण चौदश को तो इतनी भीड़ होती है कि तिल भर की भी जगह नहीं बचती ।

९. १९०० में दिगम्बर जैन महासभा और भारत जैन महामण्डल का सम्मिलित मुख पत्र **जैन गजट** नाम का था । आरा निवासी दानवीर श्री देव कुमार जी सम्पादक और बाबू राजेन्द्र किशोर जी प्रकाशक थे । यह पाक्षिक पत्र इलाहा-

बाद में छपाया जाता था। हिन्दी के साथ ४ पृष्ठ अंग्रेजी में होते थे। सन् १९०४ में **जैन गजट** अंग्रेजी में इलाहाबाद से जुगमन्दर लाल जी के सम्पादकत्व में प्रकाशित होने लगा और केवल भारत जैन महामण्डल का मुख पत्र हो गया। १९१२ में श्री जे०एल० जैनी **जैन गजट** अजित प्रसाद जी को सौंप कर लन्दन चले गए। १९१८ से **जैन गजट** श्री मल्लिनाथ के सम्पादकत्व में १९३३ तक मद्रास से निकलता रहा। १९३४ में फिर उसके सम्पादन का भार अजित प्रसाद जी ने ग्रहण कर लिया।

जैन गजट ने समाज की ४७ वर्ष सेवा की। परन्तु धीरे-धीरे ग्राहकों की संख्या कम होती गई। निराश होकर १९५० के अन्त में अजित प्रसाद जी ने **जैन गजट** बन्द कर दिया।

जैन गजट को बन्द करने के ठीक नौ महीने बाद सितम्बर १७, १९५१, की अर्ध रात्रि को ७७ वर्ष की आयु में अजित प्रसाद जी ने अपनी जीवन लीला समाप्त की और पंचभूत में लीन हो गए।

[वृहस्पतिवार दिनांक २२ सितम्बर, १९९४, को तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ०प्र०,की साधारण सभा की बैठकअजिताश्रम में सम्पन्न हुई जिसमें प्रसिद्ध समाज सेवी, विद्वान एवं पत्रकार स्व. पं. अजित प्रसाद, लखनऊ, की ४१ वीं पुण्यतिथि के उपलक्षमें समिति के अध्यक्ष श्री सुमेर चन्द पाटनी द्वारा स्व० पं० अजित प्रसाद जी के चित्र का अनावरण किया गया। मुख्य अतिथि डा० शैल नाथ चतुर्वेदी ने उनके जीवनवृत्त, व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डाला। उनके व्यक्तिगत सम्पर्क में आये समिति के मंत्री श्री अजित प्रसाद जैन ने उनके सम्बन्ध में अपने संस्मरण सुनाये और यह बताया कि लखनऊ को भारत ही नहीं विदेशों में भी ख्याति प्राप्त रहे ब्रह्मचारी शीतल प्रसाद जी, पं० अजित प्रसाद जी और डा० ज्योति प्रसाद जैन जैसे समाज सेवी विद्वानों की कर्मस्थली रहने का श्रेय है और लखनऊ नगर इस त्रयी से सम्बद्ध रहने के कारण गौरवान्वित है। डा० शशि कान्त ने भी पं० अजित प्रसाद जी के प्रेरक व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला। श्री सौभाग्यमल काला, श्री रामाकान्त जैन और डा० इंदु भूषण जिन्दल ने भी अपने उद्गार व्यक्त किये। स्व० बाबू जी के कनिष्ठ पुत्र श्री कैलाश भूषण जिन्दल ने अपने पूज्य पिताजी का उक्त चित्र तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति को सादर अर्पित किया। —सम्पादक]

उमास्वामी श्रावकाचार—एक अध्ययन

—श्री अजित प्रसाद जैन

उमास्वामी श्रावकाचार ग्रंथ का सर्व प्रथम प्रकाशन सन् १९६४ में पू० गणिनी आर्यिका रत्न श्री ज्ञानमती माता जी की प्रेरणा से हैदराबाद में हुआ था तथा इसका पुन: प्रकाशन सन् १९९१ में दि० जैन त्रिलोक शोध संस्थान से पूज्य माता जी के मार्ग दर्शन में किया गया है। ग्रंथ सरल ४७६ संस्कृत श्लोकों में ग्रथित है तथा उस पर किन्हीं (अज्ञात) पं० हलायुध की हिन्दी वचनिका है।

ग्रंथ के प्रारम्भ में पू० ज्ञानमती जी ने अपने आशीर्वचन में कहा है कि यह ग्रंथ प्रारम्भ से ही उन्हें बहुत प्रिय रहा है। श्री उमास्वामी मुनिवर ने संसारी प्राणियों को उनके कर्त्तव्यों का ज्ञान कराने हेतु यह लघु कृति गागर में सागर सदृश रची है। माता जी ने श्रावकों को प्रेरणा दी है कि अपने पुत्र-पुत्रियों के विवाह में कन्या को, बरातियों को एवं सगे सम्बन्धियों को इस प्रकार के धर्म ग्रंथ भेंट स्वरूप वितरित करते हुए सद्ग्रहस्थ की परम्परा अक्षुण्ण बनावें।

ब्र० रवीन्द्र कुमार जैन ने अपने सम्पादकीय वक्तव्य में कहा है कि "आ० श्री उमास्वामी ने इस श्रावकाचार को लिख कर ग्रहस्थों पर उपकार किया है वैसे अन्य आचार्य भगवन्तों ने भी श्रावकों के लिए अन्य-अन्य श्रावकाचार बनाए हैं। फिर भी (इस) श्रावकाचार में श्रावक संबंधी सम्पूर्ण विषय गर्भित हैं इस लिए श्रावकों के लिए यह बहुत ही उपयोगी ग्रंथ है।"

ग्रंथ की प्रस्तावना में पू० आर्यिका चन्दनामती जी ने इस श्रावकाचार के रचयिता **तत्त्वार्थ सूत्र** के कर्त्ता आ० उमास्वामी (१ ली शती ई०) को ही बताया है, तथा इस प्रकार परोक्ष रूप से इस श्रावकाचार को सर्वाधिक प्राचीन ग्रंथ सिद्ध किया है।

इस ग्रंथ के परिशीलन से ज्ञात हुआ कि इसके द्वारा श्रावकाचार में बीस-पंथी क्रियाओं का प्रबल पोषण किया गया है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित दृष्टव्य हैं :—

(१) चक्रेश्वरी, पद्मावती, दिक्पाल यक्ष आदि देवता शान्ति प्रदान करने वाले हैं। ऐसे देव सम्यग्दृष्टि होते हैं, **उनकी पूजा करने में देव मूढ़ता नहीं होती।** (पृष्ठ २९-३०)

(२) ग्रहस्थ को अपने घर में ग्रह चैत्यालय बनवाना चाहिए। जो ग्रहस्थ विशेष धनवान नहीं है वह यदि बिम्बाफल के पत्ते के समान छोटा सा चैत्यालय बनवाता है तथा उसमें जौ के समान छोटी सी प्रतिमा विराजमान कर भगवान

की पूजा करता है तो समझना चाहिए कि मुक्ति उसके अत्यन्त समीप आ चुकी है। (पृष्ठ ४२)

(३) जो भव्य जीव एक अंगुल प्रमाण प्रतिमा की भी प्रतिष्ठा करा कर नित्य पूजा करता है, वह असंख्य पुण्य कर्मों का संचय करता है। (पृष्ठ ४२) (श्रावकाचार में इस प्रकार की व्यवस्था से ही पंच कल्याणक पूजाओं तथा उनमें प्रतिष्ठित असंख्य प्रतिमाओं की बाढ़ आई है।)

(४) गृह चैत्यालय में विराजमान प्रतिमा अष्ट प्रतिहार्य युक्त तथा यक्ष-यक्षी सहित होनी चाहिए।

(५) श्रावक को अपने घर में नैऋत् दिशा में आयुधशाला (शस्त्रागार) और ईशान दिशा में देव स्थान बनाना चाहिए (पृष्ठ ४३)। (शस्त्रागार घर में रखने के प्राविधान से कदाचित धर्मनिष्ठ श्रावकों को हिंसा जन्य कार्यों में प्रवृत्त होने की छूट दी गई प्रतीत होती है?)

(६) पूजा करने वाले को इन्द्र के समान १६ आभरण (धोती, दुपट्टा, मुकुट, हार, कङ्कण, मुद्रिका आदि) पहनने चाहिए और तिलक **यज्ञोपवीत** धारण करना चाहिए (पृष्ठ ४७)। पूजा पद्मासन, सुखासन या पर्यंकासन से बैठ कर करनी चाहिए। (पृष्ठ ४६)

(७) जिनेन्द्र भगवान की पूजा इक्कीस प्रकार से की जाती है। पूजा पंचामृताभिषेक पूर्वक करनी चाहिए। शुद्ध जल, इक्षुरस, घी, दूध, दही, आम्र रस, सर्वौषधि और कल्क चूर्ण से अभिषेक करना चाहिए। **पंचामृताभिषेक करने वाले के शरीर से मन से और अकस्मात होने वाले सब तरह के संताप अवश्य नष्ट हो हो जाते हैं।** (पृष्ठ ६४)

(८) **चन्दन केसर और कपूर से** मिले सुगंधित द्रव्य से **भगवान के चरण कमलों का लेप करना चाहिए। ताजे सुगन्धित कमल, चम्पा, चमेली आदि पुष्पों को** शुद्ध जल से धोकर शुद्धता पूर्वक **भगवान के चरण कमलों पर चढ़ाना चाहिए।** ऐसे पुष्पों से जो भगवान जिनेन्द्र देव की पूजा करता है वह स्वर्गलोक में देवियों के मध्य में बैठा हुआ अनेक देवियों के सुन्दर नेत्रों द्वारा सदा पूजा जाता है।

जो भव्य जीव **पकाए हुए अनेक प्रकार के नैवेद्य** से पूजा करता है वह पांचो इन्द्रियों से उत्पन्न हुए महासुखों का अनुभव करता है। (पृष्ठ ६६)

जो आम, नारंगी, नीबू, केला आदि फलों से पूजा करता है वह अपनी इच्छानुसार फलों को प्राप्त करता है। (पृष्ठ ६६)

(सचित्त फल-फूल से भगवान जिनेन्द्र देव की पूजा का प्रबल समर्थन करते हुए वचनिकाकार पंडित जी पृष्ठ १३२ पर लिखते हैं कि पं० सदासुख जी ने **रत्न-**

करण्ड श्रावकाचार की अपनी भाषा टीका में इसका निषेद्य लिखा है पर वह उनकी निजी राय है जो पूर्वाचार्यों के मत के प्रतिकूल है।)

फल पूजा के बाद समस्त द्रव्यों से मिला अर्घ चढ़ाना चाहिए। **अर्घ में आठो द्रव्यों के सिवाय दूब, सफेद सरसों, सांथिया, नंद्यावर्त, दही, पान, आदि द्रव्य भी होते हैं। केवल अष्ट द्रव्यो को मिलाने से ही अर्घ नहीं बनता।**

भव्य जीवों को पूजा तीनों समय करनी चाहिए। **मध्यान्ह काल के समय पूजा करने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।** (पृष्ठ ७१)

स्त्रियों को भी नित्य नैमित्तिक दोनों प्रकार की पूजा करने का अधिकार है। उन्हें सर्वांग शुद्ध होकर शुद्ध वस्त्र पहन कर **विधि पूर्वक पूजा व अभिषेक करना चाहिए।** (पृष्ठ ६०)

गुरू उपासना—आचार्य, उपाध्याय, साधु परमेष्ठी गुरू कहलाते हैं परन्तु ग्रहस्थों का शासन और ग्रहस्थों को दीक्षा का कार्य ग्रहस्थाचार्य करते हैं इस लिए ग्रहस्थाचार्य भी गुरू माने जाते हैं। (पुस्तक में ग्रहस्थाचार्य के स्वरूप का वर्णन नहीं किया गया है। (पृष्ठ ७३)

दान—जो दाता मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका आदि पात्रों को निंद्य अस्पृश्य (छूने अयोग्य) औषधियाँ देता है, वह दाता भव-भव में नरक का पात्र होता है। (पृष्ठ ८३) (आधुनिक अस्पताल स्थापित करने वालों को, उनमें दान करने वालों को, इससे सबक लेना चाहिए।)

सज्जातित्व—जिस जाति या कुल में वंश परम्परा से विजातीय या अन्तर्जातीय विवाह, विधवा विवाह आदि हीन मलिनाचार नहीं होते हैं तथा यज्ञोपवीत आदि उत्तम संस्कार वंश परम्परा से चले आ रहे हैं, वही जाति और कुल सज्जाति कहलाती है। **जो सज्जाति रहित हैं उनको देव पूजा या मुनि को दान देने का अधिकार नहीं है।** (पृष्ठ ३४) (दस्सा-पूजा-निषेध ऐसी ही व्यवस्थाओं की देन था।)

यदि कोई शूद्र सम्यग्दर्शन धारण कर व अणुव्रतादिक धारण कर अपनी आत्मा को पवित्र बनाये **तो भी उसका शरीर अशुद्ध ही रहता है। इसलिये शूद्र के हाथ का भोजन पान कभी नहीं करना चाहिए।** (पृष्ठ १०४)

इस ग्रंथ के परिशीलन से हमें यह निश्चय हो गया था कि यह सावद्य बीस पंथी क्रियाओं का पोषक, श्रावकाचार ग्रंथ कोई अर्वाचीन भट्टारकीय कृति ही होनी चाहिए तथा इसे दिगम्बर जैन आम्नाय के सर्वाधिक प्राचीन एवं प्रमाणिक श्रावकाचार के ग्रंथ भगवत् समन्तभद्राचार्य कृत **रत्नकरण्ड श्रावकाचार** से भी शताधिक वर्ष पूर्व के **तत्वार्थ सूत्र** कर्त्ता ग्रद्धपिच्छाचार्य उमास्वामी कृत घोषित

करने का उद्देश्य इन क्रियाओं को तथा सज्जातित्व, अस्पृश्यता आदि मध्ययुगीन अवधारणाओं को प्राचीनतम सिद्ध करने का प्रयास मात्र है। अपने इस अभिमत के समर्थन में हम दिगम्बर जैन शास्त्रों के अनन्य अध्येता निम्नलिखित विद्वानों के मत भी उद्धृत कर रहे हैं जिन्हें हमने प्राप्त किया है—

"(१) **डा० दरबारी लाल कोठिया न्यायाचार्य, बीना—तत्त्वार्थ सूत्र के कर्त्ता आचार्य गृद्धपिच्छ हैं** जिन्हें ११वीं शती व उत्तरवर्ती कुछ लेखकों ने तथा शिलालेखों में उमास्वामी एवं उमास्वाति भी कहा है। **उनका एक मात्र ग्रंथ तत्त्वार्थ सूत्र ही है**; उमास्वाति श्रावकाचार नाम से एक ग्रंथ श्वेताम्बर परम्परा में है।

(२) **डा० (श्रीमती) कुसुम पटोरिया, नागपुर विश्वविद्यालय**—हमने यापनीय संघ का जो अध्ययन किया था उसमें यही पाया था कि **तत्त्वार्थ सूत्र के प्रणेता का नाम उमास्वामी या उमास्वाति नहीं है**। उमास्वामी या उमास्वाति तत्त्वार्थ सूत्र पर भाष्य के रचयिता हैं। और ये श्वेताम्बर आचार्य थे। परवर्ती काल में दिगम्बर परम्परा में भी तत्त्वार्थ सूत्र के प्रणेता का नाम उमास्वामी स्वीकार कर लिया गया। **उमास्वामी के श्रावकाचार के संदर्भ में हमारा भी यही अभिमत है कि ये कोई परवर्ती उमास्वामी हैं**। जीवराज जैन ग्रंथमाला सोलापुर की ओर से पाँच भागों में समस्त श्रावकाचार संग्रहीत किये गये हैं। इनमें अनेक ग्रंथों के अंश रुप में भी जो श्रावकाचार हैं, उनका भी संकलन किया गया है। इसमें आचार्य उमास्वामी गृद्ध पिच्छाचार्य के नाम से तत्त्वार्थ सूत्र का श्रावकाचार वाला अंश भी सम्मिलित है तथा उमास्वामी के नाम से एक अन्य स्वतन्त्र ग्रंथ "श्रावकाचार" भी संग्रहीत है। **श्रावकाचार संग्रह** के चतुर्थ भाग में लम्बी प्रस्तावना है, उसके अनुसार यह ग्रंथ उदयपुर से पं० हलायुध के हिन्दी अनुवाद के साथ प्राप्त हुआ है। यह श्रावकाचार अर्वाचीन (सत्रहवी शताब्दी का) है। इसमें श्वेताम्बर ग्रंथों से भी संकलन है, प्रशस्ति भी नहीं दी गई है। यह अर्वाचीन भट्टारकीय रचना ही है।"

यह विश्वास दिलाने के लिये कि इस ग्रंथ के कर्त्ता **तत्वार्थ सूत्र** के रचयिता गृद्धपिच्छाचार्य उमास्वामी ही है, आर्यिका चन्दनामती जी ने अपनी प्रस्तावना में ग्रंथ के श्लोक ४६४ का हवाला दिया है जिसमें ग्रंथकर्त्ता कहते हैं कि "मैंने तत्त्वार्थ सूत्र के सातवें अध्याय में इन समस्त अतीचारों का वर्णन किया है इसलिए यहाँ पर उनका वर्णन नहीं किया। सातवें अध्याय से जो बचे समाचार है, वें ही यहाँ इस ग्रंथ में निरुपण किये हैं।"

तत्वार्थ सूत्र के शुभ आश्रव या सम्यक् चारित्र विषयक सप्तम अध्याय में केवल ३९ सूत्र है जिनमें से १५ में समस्त ७० अतीचारों का नामोल्लेख कर दिया

गया है । १५० श्लोकों के **रत्नकरण्ड श्रावकाचार** में भी प्रत्येक व्रत के अतीचारों का वर्णन पृथक-पृथक किया गया है । किन्तु इस ४७६ श्लोकों के बृहद श्रावकाचार ग्रंथ जिसमें श्रावकाचार संबंधी छोटी-छोटी बातों का भी विस्तार से वर्णन किया गया है, में अतीचारों का वर्णन इस कारण न किया जाना क्योंकि तत्त्वार्थ सूत्र में इनका उल्लेख किया जा चुका है, युक्ति-युक्त नहीं लगता । ऐसा प्रतीत होता हैं कि ग्रंथकर्त्ता से किसी शिष्य या श्रोता द्वारा यह पूछे जाने पर कि उन्होंने अतीचारों का वर्णन ग्रंथ में क्यों नहीं किया, ग्रंथकर्ता ने श्लोक सं० ४६४ को ग्रंथ में जोड़ दिया होगा । इससे यह भी सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं रह गई कि ग्रंथकर्त्ता तथा **तत्वार्थ सूत्र** कर्ता एक ही आचार्य हैं ।

भाषा टीकाकार पं० हलायुध भी इसी बीसवीं शताब्दी के विद्वान मालूम पड़ते हैं । सज्जातित्व, यज्ञोपवीत धारण करना, शूद्र जल त्याग—इनका प्रचलन व प्रचार उत्तर भारत में पूज्य चारित्र चक्रवर्ती श्री १०८ आचार्य शांति सागर महाराज के ससंघ उत्तर भारत में पदार्पण तथा उनके संघ द्वारा इन पर जोर दिए जाने से विशेष रुप से हुआ था। पं० हलायुध भी इसी विचार धारा से प्रभावित मालूम पड़ते हैं । श्लोक ३०६ में प्रयुक्त "म्लेच्छान्न भक्षका" का अर्थ करते हुए वे अपनी भाषा टीका में लिखते हैं कि "म्लेच्छ का अन्न खाने वाले अथवा **बाजार या होटलों में भोजन** करने वाले ।" इससे भी यही सिद्ध होता है कि वे इसी शताब्दी के विद्वान थे क्योंकि होटलों में खान पान का चलन इसी शताब्दी की देन है । हमारा अनुमान है कि उन्होंने इस ग्रंथ की टीका ३०-४० के दशक में लिखी होगी ।

ग्रंथ के संपादन में भी कुछ त्रुटियाँ दृष्टिगोचर होती हैं ।

श्लोक सं० ४७६ से ज्ञात होता है कि ग्रंथ ६ अध्यायों में विभक्त है, ग्रंथकर्त्ता ने श्लोक ६५, १८२, १६७ आदि के अंत में अध्याय समाप्त होना भी लिखा है, तथापि सम्पादन में ग्रंथ को अध्यायों में विभक्त नहीं किया गया है । श्लोक २५३ में सम्यग्ज्ञान के चार भेद बताए गए हैं जबकि अर्थ में 'सम्यग्दर्शन' के चार भेद लिखे हैं ।

यह श्रावकाचार ग्रंथ सचित्त द्रव्यों से जिनेन्द्र भगवान की पूजा, पंचामृताभिषेक आदि बीस पंथी क्रियाओं का प्रबल पोषक है । जिनेन्द्र भगवान की अष्ट द्रव्यों से पूजा उन्हीं के गुणों की प्राप्ति की कामना से की जाती है । उस पूजा का फल संसार को बढ़ाने वाले भौतिक सुख-सम्पदा की प्राप्ति होना विचित्र ही अवधारणा है । अत: उन क्रियाओं का समर्थन एवं प्रचार करने वाले साधुओं-साध्वियों को यह अत्यन्त प्रिय हो तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं । ★

समणसुत्तं

हिन्दी पद्यानुवाद (क्रमश:)—**श्री प्रकाश चन्द्र जैन 'दास'**

१०१. **वय-समिदि-कसायाणं, दंडाणं तह इंदियाण पंचण्हं ।**
धारण-पालण-णिग्गह-चाय-जओ संयमो भणिओ ॥ २० ॥
व्रत नियम धारण अरू समिति का पालन सर्वथा ।
निग्रह कषायों का भी करना त्याग दण्डों का तथा ॥
जय प्राप्त करना इन्द्रियों पर तज विषय सुख कामना ।
संयम इसी का नाम है जिससे बढ़े शुभ भावना ॥ २० ॥

१०२ **विसयकसाय-विणिग्गहभावं, काऊण झाणसज्झाए ।**
जो भावइ अप्पाणं, तस्स तवं होदि णियमेण ॥ २१ ॥
तज इन्द्रियों के सुख विषय निग्रह कषायों का करे ।
ध्यान में स्वाध्याय में भी चित्त दृढ़ता से धरे ॥
आत्म भावों में तभी करता है मानव वह रमण ॥
तप धर्म से परिपूर्ण हो जाता है जानो वह श्रमण ॥ २१ ॥

१०३. **णिव्वेदतियं भावइ, मोहं चइऊण सव्वदव्वेसु ।**
जो तस्स हवे चागो, इदि भणिदं जिणवरिंदेहिं ॥ २२ ॥
द्रव्य के प्रति मोह का जब त्याग नर मन से करे ।
निर्वेद त्रिविध भाव से निज आत्मा को भी भरे ॥
ऐसे मनुज को प्राप्त होता त्याग रूपी धर्म है ।
जिनवर प्रभु मुख कमल से निकसित हुआ यह मर्म है। २२ ॥

१०४. **जेय कंते पिए भोज, लद्धे विपिट्ठिकुव्वइ ।**
साहीणे चयइ भोए, से हु चाइ त्ति वुच्चई ॥ २३ ॥
कान्त प्रिय उपलब्ध जिस को भोग हैं संसार में ।
पीठ उन से मोड़ कर रहता है शुद्ध आचार में ॥
छोड़ देता स्वयं स्वेच्छा से उन्हें मानव जभी ।
त्याग उसी को मानते हैं विज्ञजन जग में सभी ॥ २३ ॥

१०५. **होऊण य णिस्संगो, णियभावं णिग्गहित्तु सुहदुहदं ।**
णिद्दंदेण दु वट्टदि, अणयारो तस्साऽऽकिंचण्णं ॥ २४ ॥
निस्संग हो कर जो परिग्रह वृत्ति से रहता परे ।
स्वभाव से निग्रह सदा सुख दु:ख भावों का करे ॥

इस भान्ति से निर्द्वन्द्व विचरण जब करे संसार में ।
धर्म आंकिचन्य उस मुनि के रहे आचार में ॥ २४ ॥

१०६. **अहमिक्को खलु सुद्धो, दंसणणाणमइओ सदाऽरूवी ।**
ण वि अत्थि मज्झ किंचि वि, अण्णं परमाणुमित्तं पि ॥ २५ ॥

मैं एक एवं शुद्ध दर्शन ज्ञान मय हूं सर्वदा ।
शाश्वत अरूपी नाश मेरा हो नहीं सकता कदा ॥
वस्तु न कोई और मेरी जगत में अणु मात्र है ।
इस भाव से ही धर्म आर्किचन्य का नर पात्र है ॥ २५ ॥

१०७. **सुहं वसामो जीवामो, जेसिं णो नत्थि किंचण ।**
मिहिलाए डज्झमाणीए, न मे डज्झइ किंचण ॥ २६ ॥

जग में रहे सुख से सदा सुख से तथा जीते रहें ।
कुछ भी न अपने पास अपना भाव यह निशिदन गहें ॥
मिथिला यदि है जल रही उस की मैं चिन्ता क्यों करूं ।
मेरा तो उस में कुछ नहीं मैं भाव ममता क्यों धरूं ॥ २६ ॥

१०८ **चत्तपुत्तकलत्तस्स, निव्वावारस्स भिक्खुणो ।**
पियं न विज्जई किंचि, अप्पियं पि न विज्जए ॥ २७ ॥

त्याग पत्नी पुत्र आदि दूर जन संसार से ।
भिक्षु वृत्ति से मुक्त हो निवृत हुआ व्यापार से ॥
जग की किसी भी वस्तु से वह प्यार नर करता नहीं ।
द्वेष के भी भाव वह उस के प्रति धरता नहीं ॥ २७ ॥

१०९. **जहा पोम्मं जले जायं, नोवलिप्पइ वारिणा ।**
एवं अलित्तं कामेहिं, तं वयं बूम माहणं ॥ २८ ॥

पद्म उत्पत्ति का स्थल होता सरोवर सब कहीं ।
किन्तु उस के नीर से वह लिप्त रहता है नहीं ॥
निर्लिप्त जो नर काम भोगों से सदा जग में रहे ।
सद्भाव पूरित उन जनों को विज्ञ जन ब्राह्मण कहें ॥ २८ ॥

११०. **दुक्खं हयं जस्स न होइ मोहो, मोहो हओ जस्स न होइ तण्हा ।**
तण्हा हया जस्स न होइ लोहो, लोहो हओ जस्स न किंचणाइं ॥ २९ ॥

मोह जिसे होता नहीं दुःख नष्ट उसने कर लिया ।
तृष्णा रहित जन ने ही जग में नाश मोह का है किया ॥
हनन तृष्णा का करे नर लोभ जब करता नहीं ।
लोभ को मारे वही जो पास कुछ रखता नहीं ॥ २९ ॥

१११. जीवो बंभ जीवम्मि, चेव चरिया हविज्ज जा जदिणो ।
तं जाण बंभचेरं, विमुक्कपरदेहतित्तिस्स ॥ ३० ॥
तथ्य को पहचान लो है ब्रह्म यह जीवात्मा ।
तन के प्रति आसक्ति से जो मुक्त हो महात्मा ॥
ब्रह्म हेतु वे मुनि आचार जो पालन करें ।
उस क्रिया का नाम ही ब्रह्मचर्य ज्ञानी जन धरें ३० ॥

११२. सव्वंगं पेच्छंतो, इत्थीणं तासु मुयदि दुब्भावं ।
सो बम्हचेरभावं, सुक्कदि खलु दुद्धरं धरदि ॥ ३१ ॥
नारियों के अङ्ग सारे जिन से उपजे कामना ।
देखकर भी जो मनुज दे त्याग सब दुर्भावना ॥
पुण्य शाली वह कठिन आचार का पालन करे ।
भाव शुभ ब्रह्मचर्य के मानव वही धारण करे ॥ ३१ ॥

११३. जउकुंभे जोइउवगूढे, आसुभितत्ते नासमुवयाइ ।
एविथियाहि अणगारा, संवासेण नासमुवयंति ॥ ३२ ॥
घट लाख का ज्यों अग्नि का संयोग पाकर सर्वदा ।
तत्काल होता नष्ट उस के ताप से निश्चित सदा ॥
तथैव यदि अनगार भी सहवास नारी का करे ।
नष्ट हो जाये सदा जिन मार्ग से हट कर परे ॥ ३२ ॥

११४. एए य संगे समइक्कमित्ता, सुदुत्तरा चेव भवंति सेसा ।
जहा महासागरमुत्तरित्ता, नई भवे अवि गंगासमाणा ॥ ३३ ॥
नारी विषय आसक्ति से नर पार हो जाता जभी ।
सुख से सभी आसक्तियों को दूर कर देता तभी ॥
ज्यों महासागर का जल सामर्थ्य से नर जब तरे ।
गंगा नदी उस के लिए उत्पन्न नहीं बाधा करे ॥ ३३ ॥

११५. जह सीलरक्खयाणं, पुरिसाणं णिंदिदाओ महिलाओ ।
तह सीलरक्खयाणं, महिलाणं णिंदिदा पुरिसा ॥ ३४ ॥
शील रक्षक मानवों को नियम हेतु सर्वदा ।
कामना नारी की निन्दित ज्यों कही जाती सदा ॥
शील रक्षक नारियां भी भाव वैसे ही गहें ।
पुरूष के सहवास को वे भी सदा निन्दित कहें ॥ ३४ ॥

११६. **किं पुण गुणसहिदाओ, इत्थीओ अत्थि वित्थडजसाओ ।**
णरलोगदेवदाओ, देवेहिं वि वंदणिज्जाओ ।। ३५ ।।
नारियां ऐसी जगत में किन्तु कुछ रहती सदा ।
पास जिन के है अलौकिक, शील गुण की सम्पदा ।।
वे देव मानव लोक की सर्वत्र कीर्ति युक्त हैं ।
देवों से वन्दन योग्य वे दोषों से रहती मुक्त हैं ।। ३५ ।।

११७. **तेल्लोक्काडविडहणो, कामग्गी विसयरुक्खपज्जलिओ ।**
जोव्वणतणिल्लचारी, जं ण डहइ सो हवइ धण्णो ।। ३६ ।।
विषय तरू से ज्वलित होती काम की अग्नि जभी ।
लोक अटवी को जला कर भस्म कर देती तभी ।।
यौवन तृणों पर संचरण में चतुर जो मति मान हैं ।
जिनको न काम अग्नि जलाये धन्य मनुज महान हैं ।। ३६ ।।

११८. **जा जा वच्चई रयणी, न सा पडिनियत्तई ।**
अहम्मं कुणमाणस्स, अफला जन्ति राइओ ।। ३७ ।।
मनुज जीवन काल में जो बीत जाती है निशा ।
लौट कर आती कदापि न समय की वह दशा ।।
संसार में अधर्म के जो कार्य मानवगण करें ।
निष्फल हैं उन की रात्रियां वे पाप से जीवन भरें ।। ३७ ।।

११९. **जहा य तिण्णि वणिया, मूलं घेत्तूण निग्गया ।**
एगोऽत्थ लहई लाहं, एगो मूलेण आगओ ।। ३८ ।।

१२०. **एगो मूलं पि हारित्ता, आगओ तत्थ वाणिओ ।**
ववहारे उवमा एसा, एवं धम्मे वियाणह ।। ३९ ।।
वणिक त्रय कुछ धन लिए व्यापार करने को गये ।
इक कमाये लाभ इक पूंजी सम्भाले ही रहे ।।
मूढ़ इक सर्वस्व खो देता है निज व्यापार में ।
धर्म की यह तीन उपमा जांनिये संसार में ।३८-३९ ।

१२१. **अप्पा जाणइ अप्पा, जहट्ठिओ अप्पसक्खिओ धम्मो ।**
अप्पा करेइ तं तह, जह अप्पसुहावओ होइ । ४० ।
निज रूप में स्थित आत्मा को आत्मा का भान है ।
स्वभाव स्थित ही धर्म केवल आत्म साक्षिक ज्ञान है ।।
इस धर्म का पालन सदा यों आत्मा करता रहे ।
जिस से समय सुख पूर्ण उस का सर्वदा बनता रहे ।। ४० ।।

★

साहित्य सत्कार

जयोदय महाकाव्य का शैलीवैज्ञानिक अनुशीलन—लेखिका डा० (कु०) आराधना जैन "स्वतन्त्र", प्रकाशक श्री दिगम्बर जैन मुनिसंघ चातुर्मास सेवा समिति, भगवान महावीर विहार, गंज बसौदा (विदिशा) म० प्र०, सन् १९९४ ई०, पृष्ठ १६ + २३४, मूल्य पचास रुपये।

आचार्य जिनसेन एवं आचार्य गुणभद्र के **आदि पुराण**, भाग-२ (पर्व ४३-४७) में तथा कई अन्य परवर्ती ग्रन्थों में प्राप्त प्रथम तीर्थंकर **ऋषभदेव** के तीर्थ में हुए हस्तिनापुर नरेश जयकुमार तथा काशी नरेश अकम्पन की सुता सुलोचना के कथा वृत्त के आधार पर इनकी प्रणय-कथा के माध्यम से अपरिग्रह अणुव्रत के माहात्म्य का प्रतिपादन करने वाला अट्ठाइस सर्गों में निबद्ध, राजस्थान के राणोली ग्राम में जन्मे महाकवि पं. भूरामल जी (दिगम्बर आचार्य श्री ज्ञानसागर महाराज) द्वारा रचित **जयोदय महाकाव्य**, काव्यशास्त्रीय लक्षणों से परिपूर्ण वर्तमान शती में रचित एक उत्कृष्ट संस्कृत महाकाव्य माना जाता है। **जयोदय महाकाव्य का समीक्षात्मक अध्ययन** विषयक शोध प्रबन्ध प्रस्तुत कर डा० के० पी० पाण्डेय ने सन् १९८२ ई० में गोरखपुर विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० उपाधि प्राप्त की थी। चूंकि डा० पाण्डेय का शोध प्रबन्ध इस महाकाव्य के केवल परम्परागत पक्ष तक सीमित रहा, कु० आराधना जैन 'स्वतन्त्र' ने इसका आधुनिक शैली-वैज्ञानिक परीक्षण अपने शोध प्रबन्ध **जयोदय महाकाव्य का शैलीवैज्ञानिक अनुशीलन** में किया, जिस पर उन्हें सन् १९९१ में बरकतउल्लाह विश्वविद्यालय, भोपाल ने पी-एच० डी० उपाधि प्रदान की। इस प्रकार डा० आराधना जैन ने गहन अध्ययन द्वारा **जयोदय महाकाव्य**, जो शैली में श्री हर्ष के **नैषधीय चरितम्**, अर्थ गौरव में भारवि के **किरातार्जुनीयम्**, प्रकृति वर्णन में माघ के **शिशुपालवधम्**, दार्शनिक विवेचन में अश्वघोष के **सौन्दरानन्द** तथा वैराग्य प्रसंग में हरिचन्द्र के **धर्मशर्माभ्युदय** का स्मरण कराने वाला है, के डा० पाण्डेय द्वारा अछूते पक्ष को उजागर किया है, जिसके लिये वह साधुवाद की पात्र हैं। महाकवि भूरामल का संक्षिप्त जीवन वृत्त और उनकी अन्य कृतियों का परिचय भी इस शोध प्रबन्ध में लभ्य है। पुस्तक काव्य मर्मज्ञों के लिये संग्रहणीय है। मुद्रग और प्रकाशन की दृष्टि से भी कृति उत्तम है।

अध्यात्म-अमृत-कलश—(श्री अमृतचन्द्राचार्यकृत समयसार कलशों की स्वात्म-प्रबोधिनी टीका व प्रवचन), टीकाकार एवं प्रवचनकार—पं० जगन्मोहन लाल

सिद्धान्तशास्त्री, सम्पादक पं० कैलाश चन्द्र सिद्धान्तशास्त्री, प्रकाशक—श्री चन्द्रप्रभ दिगम्बर जैन मन्दिर, कटनी, तृतीय आवृत्ति १६६१ ई०, चित्र-३ और पृष्ठ सं० ७१ + ४०८, लागत मूल्य पचास रुपये तथा प्रचार हेतु विक्रय मूल्य पच्चीस रुपये ।

आचार्य कुन्दकुन्द (प्रथम शती ईस्वी के पूर्वार्द्ध) की कृतियों को प्रकाश में लाने का श्रेय दशवीं शती ईस्वी में हुए आचार्य अमृतचन्द्र को है जिन्होंने उनके प्राकृत भाषा में निबद्ध **समयसार पाहुड** (प्राभृत), **प्रवचनसार पाहुड** और **पञ्चास्तिकायसार** ग्रन्थों पर सर्वप्रथम संस्कृत भाषा में टीकाएं रची थी। अध्यात्म जैसे गूढ़ विषय का वर्णन करने वाले **समयसार पाहुड** पर अमृतचन्द्राचार्य ने सुललित पद्यों में जो व्याख्या की उसने परवर्ती साहित्यकारों एवं अध्यात्म रसिकों की रुचि उस ग्रन्थ की ओर जागृत की जिसके फलस्वरूप आचार्य शुभ चन्द्र ने पुनः संस्कृत में टीका तथा पाण्डे राजमल्ल ने हिन्दी भाषा में **बालबोधनी टीका** लिख डाली और उन सबसे प्रभावित हो सत्रहवी शती में कविवर बनारसी-दास ने **समयसार नाटक** रच डाला। आचार्य अमृतचन्द्र के **समयसार** पर रचे गये पद्यों को 'कलश' की संज्ञा प्राप्त हुई। वर्तमान शती में कानजी स्वामी ने **समयसार** का व्यापक प्रचार कर विद्वानों और अध्यात्म रसिकों की अभिरुचि में और भी वृद्धि की। जैन जगत के मूर्धन्य प्रौढ़ विद्वान पं० जगन्मोहन लाल सिद्धान्त शास्त्री जी को इन्दौर में दो वर्ष पर्यूषण पर्व पर **समयसार** पर प्रवचन करने का जो अवसर प्राप्त हुआ और उस समय उन्होंने श्रोताओं की विभिन्न शंकाओं का जिस सरल एवं प्रभावी ढंग से समाधान किया उससे प्रभावित स्वाध्यायी भाइयों ने उक्त शंका-समाधान के साथ आचार्य अमृतचन्द्र के **समयसार कलश** की भाषा टीका लिखने का उनसे आग्रह किया था। उन भाइयों के अनुरोध पर पंडित जी ने प्रत्येक श्लोक के अन्वयार्थ और भावार्थ देने के साथ-साथ उनके विषय में उठाये गये प्रश्नों और उनके समाधान सहित **अध्यात्म-अमृत-कलश** नाम की यह स्वात्मप्रबोधिनी टीका रची। इस टीका को पंडित जी ने प्रारम्भ मे ३१ पृष्ठ की विस्तृत प्रस्तावना और १७ पृष्ठों में आचार्य अमृतचन्द्र सूरि का परिचय देकर तथा अन्त में सरल सरस संस्कृत में ग्रन्थ प्रशस्ति, स्वात्म-प्रबोधिनी टीका में आए प्रश्नों की अनुक्रमाणिका तथा अकारादि क्रम से कलशों की सूची देकर गरिमायुक्त बना दिया है। पं० कैलाश चन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्री को इसके सम्पादन का श्रेय है और प्रस्तुत ग्रन्थ उनके प्राक्कथन तथा पं० फूल चन्द्र शास्त्री के **जिनशासन** नामक पुरोवाक् से भी अलंकृत है। पं० जगन्मोहन

लाल जी जैसे विद्वान की लेखनी से प्रसूत इस **अध्यात्म-अमृत-कलश** के विषय में हम जैसे अल्पज्ञ का कुछ लिखना सूर्य को दीपक दिखाना होगा। इस ग्रन्थ के थोड़े ही समय में तीन संस्करण प्रकाशित होना इसकी लोकप्रियता के द्योतक हैं।

भक्तामर-भारती— संकलन एवं सम्पादन—पं० कमल कुमार जैन शास्त्री 'कुमुद' तथा श्री विपिन जारोली; प्रकाशक—श्री खेम चन्द्र जैन चेरिटेबिल ट्रस्ट, १७८ केशवगंज, सागर (म० प्र०); पृष्ठ १००३ + ६० + २५ + चित्र ६२; मूल्य १११ रुपये।

७वीं शती ईस्वी में हुए आचार्य मानतुंग द्वारा सुष्ठु संस्कृत में बसन्त तिलका नामक वार्णिक छन्द में रचित ४८ श्लोकीय **भक्तामर-स्तोत्र** (अपर नाम **आदिनाथ स्तोत्र**) जैनों के दिगम्बर एवं श्वेताम्बर उभय सम्प्रदायों में तो अत्यन्त लोकप्रिय रहा ही, जैनेतर भारतीय विद्वानों और पाश्चात्य विद्वानों का ध्यान आकर्षित करने में भी सफल हुआ है। ११वीं शती में हुए दिगम्बराचार्य प्रभाचन्द्र ने इसे **महाव्याधिनाशक** बताया तो १३वी शती में हुए श्वेताम्बराचार्य प्रभाचन्द्र सूरि ने इसे 'सर्वोपद्रव हर्ता' की संज्ञा दी है। इसके भक्तों ने अपनी-अपनी भाषा में इसके भावानुवाद कर इसके प्रति न केवल अपना अनन्य प्रेम व्यक्त किया है अपितु भारती के भण्डार में अभिवृद्धि की है। मैक्समूलर, कीथ, वेबर, गिरनाट, जैकोबी, विन्टरनित्स, शालोट काउजे जैसे प्रकाण्ड यूरोपीय प्राच्यविदों तथा पं० दुर्गाप्रसाद काशीनाथ शर्मा, गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, बलदेव उपाध्याय, भोला शंकर व्यास जैसे संस्कृतज्ञ भारतीय मनीषियों ने मानतुंग की इस अमर कृति की प्रशंसा की है और डा० हर्मन जैकोबी ने तो सन् १८७६ ई० में इसका जर्मन भाषा में अनुवाद किया था, बताया जाता है।

इस **भक्तामर-स्तोत्र** के अनन्य भक्त खुरई निवासी पं० कमल कुमार जैन शास्त्री 'कुमुद' जिन्होंने स्वयं सन् १९३५ ई० में सरल-सरस हिन्दी में इसका पद्यानुवाद किया था और जो **भक्तामर मंगल गीता** तथा **सचित्र भक्तामर रहस्य** जैसी कृतियां प्रसूत कर चुके हैं, ने अब श्री विपिन जारोली के सहयोग से, सन् १९९३ ई० के मध्य इस स्तोत्र के हिन्दी (९४), मराठी (६), गुजराती (८), मेवाड़ी (१), राजस्थानी (२), अवधी (१), बांग्ला (१), कन्नड (१), तमिल (१), उर्दू (१), फारसी (१) और अंग्रेजी (१) इस प्रकार कुल १२१ प्रकाशित और अप्रकाशित पद्यानुवादों को संकलित कर भक्त एवं काव्य-मर्मज्ञ पाठकों को **भक्तामर भारती** नामक यह अमर कृति भेंट की है। डा० शेखर चन्द्र जैन,

जिन्होंने स्वयं भी इस स्तोत्र का हिन्दी पद्यानुवाद किया है, ने इस कृति पर सारगर्भित अपनी भूमिका में अमर कृति **भक्तामर स्तोत्र** पर प्रकाश डालने के साथ-साथ संकलित पद्यानुवादों की समीक्षा की है। डा० ज्योति प्रसाद जैन के 'आविर्भाव' ने कृति को गरिमा प्रदान की है और आचार्य मानतुंग के तथा अनुवादकर्ताओं के परिचय ने ग्रन्थ को उपयोगी बनाया है। मुद्रण-प्रकाशन भी कृति के अनुरूप है। ग्रन्थ पठनीय एवं संग्रहणीय है। इस उपयोगी संकलन के लिये सम्पादक बधाई के पात्र हैं।

—**रमा कान्त जैन**

धर्म मंगल—विशेषांक सितम्बर १९९४ (अंक १२-१३)।

इस युग के प्रथम दिगम्बर जैन आचार्य, गुरुणांगुरु, चारित्र-चक्रवर्ती परम पूज्य १०८ श्री शांति सागर महाराज की ४०वीं पुण्य तिथि के सुअवसर पर उनको समर्पित **धर्म मंगल** का यह महत्वपूर्ण विशेषांक निकाल कर विदूषी सम्पादिका प्रा० सौ० लीलावती जी ने न केवल आचार्य श्री के प्रति अपनी प्रगाढ़ भक्ति का ही परिचय दिया है वरन् विगत कुछ वर्षों से कतिपय महाव्रती साधु-साध्वियों द्वारा मृषावाद का सहारा लेकर अपनी गुरु परम्परा को प्राचीनतम सिद्ध करने के ओछे प्रयास से मुनि श्री आदि सागर अंकलीकर महाराज को आचार्य शांति सागर महाराज से पूर्व हुए आचार्य होने के प्रचार का सशक्त प्रमाणों से भण्डाफोड़ कर दिया है। विदूषी सम्पादिका जी ने इस विषय को तीन हिस्सों में बांटा है—(१) आचार्य मुनियों के मत, (२) तत्कालीन ग्रंथ, पत्रिकाओं के प्रमाण, तथा (३) प्रत्यक्षदर्शी के अभिप्राय। विशेषांक में आचार्य श्री के रोचक संस्मरण, उनके वचनों के सार तथा उनके अन्तिम उपदेश को भी संकलित करने से इसकी उपयोगिता में विशेष अभिवृद्धि हो गई है। विशेषांक संग्रहीय है तथा सम्पादिका जी इसके प्रकाशन के लिए बधाई की पात्र हैं।

सामायिक सूत्र एवं आध्यात्मिक गीत मंजरी—संकलनकर्ता एवं भेंटकर्ता—एम० पुखराज चौधरी (जैन) पीपाड़वाले, २७ कुलेकरई स्ट्रीट, तिरुमलैवायल, मद्रास-६०००६२, सम्पादक—श्री जवाहर लाल बाघमार (जैन) कोसाना वाले, मद्रास।

स्थानकवासी जैनाचार्य स्व० श्री हस्तीमल जी महाराज की तृतीय पुण्य तिथि के सुअवसर पर प्रकाशित यह पुस्तक दो खंडों में विभक्त है। प्रथम खंड में सामायिक सूत्र (प्राकृत) हिन्दी अर्थ सहित, सामायिक लेने की विधि, णमोकार मंत्र जाग्रत करने की विधि, आनुपूर्वी आचार्य श्री हस्तीमल जी, श्री हीरा लाल जी तथा उपाध्याय श्री मानमल जी महाराज के जीवन परिचय संबंधी लेख आदि का समावेश किया गया है तथा दूसरे खंड में कुछ आध्यात्मिक गीतों का संकलन किया गया है। पुस्तक उपयोगी है।

भयंकर दुखों की खान–रात्रि भोजन—संपादक–मुनि श्री कमल रत्न विजय जी महाराज, प्रकाशक—भाविक कारपोरेशन, ८६/६१ जुनी हनुमान गली, धन जी मुल जी बिल्डिंग, तीसरा माला रूम नं ३७, बम्बई-४०००0२, पृष्ठ सं० ३२, मूल्य रु० ६/- ।

इस पुस्तिका में रात्रि भोजन, मद्य मांस मधु, पंच उदम्बर, जमीकंद तथा अन्य अभक्ष्य पदार्थों के सेवन में दोष संबंधी जैन एवं जैनेतर संस्कृत साहित्य से सुभाषित संग्रहीत किए गए हैं । पुस्तिका उपयोगी है ।

शील-भक्ति अनुराग-रचयिता–छुल्लक श्री शील सागर जी महाराज, प्रका.–समस्त दिगम्बर जैन समाज शुजालपुर मंडी, जिला शाजापुर(म.प्र.),पृ. २०, मू.-सदुपयोग ।

इस लघु पुस्तिका में पू० आचार्य श्री सन्मतिसागर महाराज के सुशिष्य छुल्लक श्री शील सागर महाराज द्वारा सरल हिन्दी पद्य में रचित घाटोल नगरी (राज०) में ८०० वर्ष प्राचीन ५२ शिखरों से मंडित जिनालय के मूलनायक वासुपूज्य भगवान की पूजा, त्रिमूर्ति (महाराज आदिनाथ-भरत-बाहुबलि) की पूजा, बारह भावना, सोलहकारण भावना एवं कुछ आध्यात्मिक भजन संकलित किये गये हैं । पुस्तक का प्रकाशन शुजालपुर मंडी की दिगम्बर जैन समाज ने छुल्लक श्री के वर्ष १९९४ के चातुर्मास के सुअवसर पर किया है ।

—अजित प्रसाद जैन

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र शोध पुस्तकालय

शोध पुस्तकालय को इस वर्ष निम्नलिखित महानुभावों से धार्मिक ग्रंथों का विशेष योगदान सधन्यवाद प्राप्त हुआ—

(१) श्रीमान लूनकरण संजय कुमार नाहर, राजेन्द्र नगर, लखनऊ—आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, से प्रकाशित श्वेताम्बर आगम ग्रंथों का सम्पूर्ण सैट (३० जिल्दों में—मूल्य रु० २,०००/-) । इसके पूर्व श्री नाहर जी स्व० आचार्य हस्तीमल जी कृत **जैन धर्म का मौलिक इतिहास** (४ खण्डों में—मूल्य रु० ४००/-) भी पुस्तकालय को भेंट कर चुके हैं ।

(२) **श्रीमान कैलाश भूषण जिन्दल, अजिताश्रम, गणेशगंज, लखनऊ**—स्व० पं० अजित प्रसाद जी एडवोकेट के धार्मिक ग्रंथों के प्राचीन संग्रह के ४३ ग्रंथ । इसके पूर्व श्री जिन्दल अंग्रेजी The Jaina Gazette की पूरी फाइल (वर्ष १९०४ से १९५० तक की) भी पुस्तकालय को प्रदान किए हैं ।

ये दोनों महानुभाव हमारी समिति के सदस्य हैं । समिति इनके सरस्वती अनुराग के लिए आभारी है ।

इस समय पुस्तकालय में रु० ७६०००/- से अधिक मूल्य के ग्रंथ संग्रहित हैं जिसमें प्रमुखता जैन धर्म (सभी सम्प्रदाय) सहित सभी भारतीय धर्मों, दर्शन एवं संस्कृति के महत्वपूर्ण ग्रंथों के संग्रह की है ।

—अजित प्रसाद जैन, मंत्री

समाचार विमर्श

—श्री अजित प्रसाद जैन

श्री सम्मेद शिखर विवाद : दो आचार्यों के मध्य सौहार्द वार्ता

श्वेताम्बर जैन (पाक्षिक) में प्रकाशित एक चित्र के अनुसार दिल्ली में चातुर्मास रत राष्ट्र संत श्वेताम्बर आचार्य श्री पद्म सागर सूरि जी महाराज एवं राष्ट्र संत दिगम्बर आचार्य श्री विद्यानन्द जी महाराज की श्री सम्मेद शिखर महातीर्थ संबंधी विवाद को हल कराने के लिए सौहार्दपूर्ण वार्ता हुई।

उपरोक्त समाचार पढ़ कर हमें सुखद सन्तोष हुआ। हमने भी **शोधादर्श**-२३ (जुलाई १९९४) के अंक में अपने सम्पादकीय लेख में यह सुझाव दिया था कि यदि हमारे ये शीर्ष वीतरागी संत एक साथ बैठ कर इस विवाद को समाप्त कराने का प्रयास करें तो अवश्य ही सुखद परिणाम निकलेंगे।

इस संबंध में पू० आचार्य श्री विद्यानन्द जी महाराज का निम्नलिखित संदेश भी **अहिंसा वाणी** (अलीगंज-एटा) के अक्टूबर १९९४ के अंक में प्रकाशित हुआ है—

"दिलों की जीत ही असली जीत होती है। अस्त्र-शस्त्र, धन-दौलत, राजनीतिक प्रभाव, कूटनीति आदि से प्राप्त विजय अस्थाई होती है। हम चाहते हैं कि दिगम्बर श्वेताम्बरों का और श्वेताम्बर दिगम्बरों का दिल जीतें। आपस में मिल बैठकर बात करने और समस्याओं के सौहार्दपूर्ण वातावरण में हल करने में जो आनन्द है वह और कहीं नहीं। अहिंसा, वात्सल्य और शान्ति में जियें और जीने दें, यही सर्वोत्तम मार्ग उपाय है सर्वोत्तम जीवन पद्धति का एवं धर्म का। 'अस्तु'।"

जब से श्री सम्मेद शिखर के प्रबन्धन के लिए दिगम्बर-श्वेताम्बरों के बराबर की साझेदारी वाले एक संयुक्त बोर्ड की स्थापना संबंधी बिहार सरकार का प्रस्तावित अध्यादेश (जो इस समय केन्द्र सरकार के विचाराधीन है) प्रकाश में आया है, दिगम्बरों श्वेताम्बरों में आपसी कटुता अत्यधिक बढ़ गई है। जहाँ एक ओर दिगम्बर समाज द्वारा अध्यादेश को शीघ्र लागू किये जाने की मांग को लेकर नगर-नगर में विशाल मौन रैलियां तथा सामूहिक उपवास, धरने आयोजित करके अहिंसामय संघर्ष जारी रखने के समाचार प्राप्त हो रहे हैं तथा जिसे कतिपय मुनिराजों एवं आचार्यों की प्रेरणा एवं आशीर्वाद भी प्राप्त हैं,

वहीं दूसरी ओर इन्दौर से प्राप्त एक समाचार के अनुसार **श्वेताम्बर जैनाचार्य श्री अभय सोम सूरीश्वर महाराज ने श्री सम्मेद शिखर तीर्थ की रक्षा के लिए विगत दिनों हाथ में तलवार लेने का संकल्प लिया है।** महाराज जी ने इस बात पर चिन्ता जाहिर की कि तीर्थराज पर न्यायालय के स्थगन आदेश के बावजूद दिगम्बर जैन धर्मावलम्बी मन्दिर व धर्मशाला का निर्माण करा रहे हैं जो सीधे न्यायालय की अवमानना है। महाराज जी ने दिगम्बर जैन समाज के नेताओं के उस बयान को जिसमें उन्होंने दिल्ली में आयोजित रैली में आई भीड़ की भावनाओं की कद्र करने का आह्वान किया है चुनौतीपूर्वक स्वीकारते हुए कहा कि **श्वेताम्बर जैन समाज भी पाँच लाख लोगों की ऐतिहासिक रैली निकाल कर दिगम्बर जैन समाज के नेताओं को करारा जवाब देगा।**

एक अन्य समाचार के अनुसार देश के श्वेताम्बर जैन संघ के प्रतिनिधियों की बम्बई में सम्पन्न एक बैठक में **अखिल भारतवर्षीय तीर्थ रक्षा समिति का गठन किया गया। यह समिति पाँच करोड़ का कोष एकत्रित करेगी। इस कोष में आनन्द जी कल्याण जी पेढ़ी की ओर से दो करोड़ रुपये का अंशदान दिया गया** तथा पचास लाख रुपये की घोषणा बैठक में उपस्थित श्रेष्ठियों ने की।

कटुता के उपरोक्त वातावरण में जिसमें दोनों सम्प्रदायों के कतिपय मुनिराज भी हवा दे रहे हैं, दोनों राष्ट्र संतों की सौहार्द पूर्ण वार्ता तथा आचार्य विद्यानन्द महाराज का सन्देश कटुता की अग्नि में शीतल जल की फुहार के समान है। हम दोनों राष्ट्र संतों का अभिनन्दन करते हैं।

करोड़पति दम्पति की वैराग्य साधना

जयपुर निवासी श्री प्रकाश चन्द सचेती (४६) एवं उनकी धर्म पत्नी श्रीमती शशि (४३) ने अपनी लगभग २५ करोड़ की सम्पत्ति विभिन्न संस्थाओं, चैरिटेबल ट्रस्टों को दान करके दिनांक १४ सितम्बर ६४ को १५-२० हजार जनता की उपस्थिति में श्वेताम्बर मुनि श्री चम्पा लाल जी महाराज से भागवती दीक्षा अंगीकार की। श्री सचेती निःसन्तान हैं तथा अपने पिता के एक मात्र पुत्र हैं। सचेती दम्पति पिछले सात वर्षों से ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर रहे थे। दीक्षित मुनि श्री का नाम श्री शीलभद्र मुनि तथा दीक्षिता का नाम महासती श्री शशिकला जी घोषित किया गया।

मुनि कुमुद नंदि महाराज का आचार्य पद अलंकरण

मेरठ जिले के एक छोटे कस्बे अमीनगर सराय में चातुर्मासरत युवा दिगम्बर जैन मुनि कुमुद नंदि महाराज का आचार्य पद अलंकरण समारोह विधि विधान पूर्वक दिनांक ३ अक्टूबर ६४ को पं० धर्म चन्द्र शास्त्री द्वारा सम्पन्न कराया गया।

प्राप्त समाचारों में यह उल्लेख नहीं है कि इन मुनि श्री का मुनि दीक्षा का क्या काल है, उनके दीक्षा गुरु कौन हैं (वैसे हमारा अनुमान है कि गणधराचार्य कुन्थु सागर महाराज ही इनके दीक्षा गुरु होंगे क्योंकि उन्हीं के शिष्यों के नाम के अंत में 'नन्दि' शब्द सामान्यतया लगा होता है) तथा क्या आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किये जाने के लिए गुरु महाराज की अनुमति प्राप्त कर ली गई थी या स्थानीय जन समूह ने ही अपनी श्रद्धा के आवेश से उन्हें इस उच्च पद पर अभिषिक्त कर दिया है।

जैन विश्वविद्यालय की प्रगति

आचार्यकल्प विद्याभूषण श्री सन्मतिसागर महाराज ने एक अध्यात्म शिविर के उद्घाटन के सुअवसर पर बताया कि सोनागिर में जैन विश्वविद्यालय का कार्य प्रारम्भ हो गया है, एक करोड़ की राशि प्राप्त हो चुकी है। दो भवन श्री आर० के० जैन बम्बई तथा एक भवन श्री सोहन लाल सेठी डीमापुर वालों की ओर से तैयार हो चुके हैं। कुल २१ भवन बनने हैं। १३-१५ अगस्त को एक विशाल सेमिनार का आयोजन किया गया था जिसमें १५० आमंत्रित विद्वानों में से २१ विद्वान पधारे थे। सेमिनार में निर्णय लिया गया कि प्रस्तावित विश्वविद्यालय में जाति-पांति का कोई बन्धन नहीं होगा लेकिन सभी के लिए शाकाहारी होना अनिवार्य होगा, प्रौद्योगिक शिक्षा के साथ भारतीय दर्शन व संस्कृति की शिक्षा भी दी जाएगी तथा नशे से होने वाली हानि के बारे में साहित्य प्रकाशित किया जायेगा।

और अब आचार्य कल्याण सागर महाराज की चरण पादुका

हमने **शोधादर्श**-२३ के पृष्ठ ५६-६० पर यह समाचार प्रकाशित किया था कि किन्हीं आचार्य श्री तथा भट्टारक स्वामी जी की प्रेरणा से चारित्र चक्रवर्ती स्व० आचार्य शांति सागर महाराज जिन्होंने अपने दीर्घ दीक्षा काल में कभी चरण पादुकाओं का उपयोग नहीं किया, की ४०वीं पुण्य तिथि पर उनकी चरण पादुकाओं को जिन मन्दिरों व तीर्थ क्षेत्रों में प्रतिष्ठापित करने के प्रचार अभियान से दिगम्बर जैन आम्नाय में एक नई परम्परा को जन्म दिया जा रहा है।

अब समाचार प्राप्त हुआ है कि मन्दसौर से १५ कि० मी० दूर चौपाटी में स्थित कल्याण केन्द्र में णमोकार महामंत्र के अनन्य प्रचारक स्व० आचार्य श्री कल्याण सागर महाराज की चरण पादुकाएं निकट भविष्य में स्थापित होने जा रही हैं।

हमें विस्मय नहीं होगा यदि अब अन्य दिवंगत आचार्यों, मुनिराजों की चरण पादुकाएं भी उनके श्रद्धालु भक्तों द्वारा जगह-जगह स्थापित की जाने लगें। ★

बधाई

राजस्थान विश्वविद्यालय के कम्युनिकेशन ब्यूरो के निदेशक एवं पत्रकारिता पाठ्यक्रम के प्रभारी तथा 'जिनवाणी' एवं 'श्रमणोपासक' पत्रिकाओं के सम्पादक डा० संजीव भानावत को उनकी पुस्तक **पत्रकारिता के विविध परिदृश्य** पर लखनऊ में १४ सितम्बर, १९९४ को उत्तर प्रदेश के राज्यपाल श्री मोती लाल वोरा द्वारा सन् १९९२ के बाबूराव विष्णुराव पराडकर पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

जयपुर की शोध छात्रा निधि खिन्दूका को उनके शोध प्रबन्ध "भारत में रत्न उद्योग के प्रमुख केन्द्रों का क्षेत्रवार विश्लेषण" पर राजस्थान विश्वविद्यालय ने पी-एच० डी० उपाधि प्रदान की।

गाजियाबाद के वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक श्री अरविन्द कुमार जैन, आई० पी० एस०, को उनकी सराहनीय सेवाओं के लिए इस वर्ष स्वाधीनता दिवस समारोह पर राष्ट्रपति-पदक से सम्मानित किया गया।

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर, द्वारा प्रो० लक्ष्मी चन्द जैन, जबलपुर, को उनकी कृति The Tao of Jaina Sciences पर १९९४ के कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित करने की घोषणा की गई है।

सुविख्यात वयोवृद्ध विद्वान न्यायाचार्य डा० दरबारी लाल कोठिया जी को उनकी जैन धर्म, दर्शन और साहित्य की सेवाओं, विशेषकर उनके द्वारा सम्पादित एवं अनूदित **आप्त परीक्षा** के पुनः संवर्धित संस्करण के लिये स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी द्वारा प्रवर्तित वर्ष १९९३ का श्री गणेश वर्णी स्मृति साहित्य पुरस्कार, सागर में २३ सितम्बर को **भक्तामर-भारती** के विमोचन के अवसर पर मध्य प्रदेश के उच्च शिक्षा मंत्री श्री मुकेश नायक द्वारा प्रदान किया गया। इस पुरस्कार हेतु ५००१ रु० की सम्मान राशि सेठ डालचन्द जैन ने स्याद्वाद महाविद्यालय को सेठ भगवान दास शोभा लाल जैन ट्रस्ट की ओर से प्रदान की।

शोधादर्श परिवार उपर्युक्त महानुभावों को उनकी उपलब्धि पर बधाई देता है। ★

समाचार विविधा

संगोष्ठियां

जैन विज्ञान विचार संगोष्ठी, गुना—दिनांक २६ से २८ अगस्त को दिगम्बर जैन समाज, गुना (मध्य प्रदेश) द्वारा श्री क्षमा सागर जी ऐलक, श्री उदार सागर जी एवं श्री सम्यक्त्व सागर जी ऐलक के सानिध्य और डा० अभय प्रकाश जैन, ग्वालियर के संयोजकत्व में एक त्रिदिवसीय जैन विज्ञान विचार संगोष्ठी हुई जिसमें आठ सत्रों में १५ शिक्षाविद् एवं पुराविदों ने अपने शोध-पत्रों का वाचन किया। उक्त संगोष्ठी के अन्तिम दिन आयोजित समारोह में 'जैन पुराणकोश' के रचनाकारों एवं संकलनकर्ताओं का सम्मान भी किया गया।

गोपाचल सिद्ध क्षेत्र (ग्वालियर) पर वर्कशाप—दिनाक ३ से ५ सितम्बर को कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर द्वारा गोपाचल मोनोग्राफ पर एक त्रिदिवसीय वर्कशाप आयोजित हुई जिसमें ६ विद्वानों ने अपने शोधपरक आलेखों का वाचन किया।

अजमेर में अखिल भारतीय विद्वत् संगोष्ठी—दिनांक १३ से १५ अक्टूबर को सोनी जी की नासियां, अजमेर (राजस्थान) में मुनि श्री सुधा सागर जी महाराज के सानिध्य में सम्पन्न त्रिदिवसीय संगोष्ठी में आठ सत्रों में ३० विद्वान वक्ताओं ने महाकवि पं० भूरामल जी (आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज) द्वारा वर्तमान शती में संस्कृत में भगवान महावीर पर रचित 'वीरोदय' महाकाव्य के विभिन्न पक्षीय अध्ययन विषयक अपने शोध-पत्रों का वाचन किया।

डी० मोन्टफोर्ट विश्वविद्यालय, लेस्टर (ब्रिटेन) में जैन अध्ययन का पाठ्यक्रम प्रारम्भ—लेस्टर की जैन एकेडमी के चेयरमैन डा० नन्दू भाई शाह और अध्यक्ष भारतीय उच्च आयुक्त डा० एल० एम० सिंघवी तथा रीवा (म० प्र०) के डा० नन्द लाल जैन के सत्प्रयासों से डी० मोन्टफोर्ड विश्वविद्यालय में सितम्बर १९९४ से बी० ए० में जैन अध्ययन का त्रिवर्षीय पाठ्यक्रम प्रारम्भ हो गया है। डा० रिचर्ड फायनेस के निर्देशन में पहली छमाही में १२ छात्रों ने प्रवेश लिया है।

आचार्य कुन्दकुन्द पुरस्कार—प्राकृत भाषा के उत्थान में महत्वपूर्ण योगदान के लिये प्रमुख उद्योगपति एवं प्राकृत प्रेमी पद्मश्री स्व० सेठ लाल चन्द हीरा चन्द दोशी बम्बई की पुण्य स्मृति में स्थापित एक लाख रुपये का प्रथम आचार्य कुन्दकुन्द पुरस्कार २३ अक्टूबर को नई दिल्ली में कुन्दकुन्द भारती के प्रांगण में राष्ट्र सन्त आचार्य श्री विद्यानन्द जी के सानिध्य में भव्य समारोह में

केन्द्रीय वित्त मंत्री डा० मनमोहन सिंह ने संस्कृत एवं भारतीय भाषाओं के प्रसिद्ध विद्वान एवं शिक्षा शास्त्री डा० मंडन मिश्र को प्रदान किया और उन्हें 'विद्या महोदधि' उपाधि से भी अलंकृत किया गया।

डा० शान्ता भानावत उच्चतर अध्ययन एवं शोध संस्थान का लोकार्पण—जयपुर में १३ सितम्बर को 'जिनवाणी' के पूर्व सम्पादक एवं राजस्थान विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष रहे स्व० डा० नरेन्द्र भानावत की जन्म तिथि पर हिन्दी एवं राजस्थानी की प्रसिद्ध लेखिका स्व० डा० शान्ता भानावत की स्मृति में दयानंद मार्ग, तिलक नगर स्थित उनके निवास पर एक उच्चतर अध्ययन एवं शोध संस्थान का लोकार्पण राजस्थान विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो० आर० एन० सिंह की अध्यक्षता में किया गया। भानावत दम्पति के निजी संग्रहालय की हिन्दी एवं राजस्थानी साहित्य तथा जैन धर्म, दर्शन व संस्कृति विषयक लगभग छह हजार पुस्तकों से प्रारम्भ किये गये इस शोध संस्थान का संचालन डी० पी० डा० नरेन्द्र भानावत चेरिटेबिल ट्रस्ट द्वारा किया जाएगा।

उक्त ट्रस्ट के प्रबन्ध न्यासी डा० संजीव भानावत ने ट्रस्ट की ओर से डा० नरेन्द्र भानावत की स्मृति में प्रतिवर्ष राजस्थानी साहित्य में श्रेष्ठ लेखन पर पांच हजार रुपये का पुरस्कार तथा डा० शान्ता भानावत की स्मृति में वीर बालिका महाविद्यालय की छात्राओं को छात्रवृत्ति एवं राजस्थान विश्वविद्यालय के पत्रकारिता पाठ्यक्रम में सर्वाधिक अंक प्राप्त करने वाली छात्रा को स्वर्ण पदक दिये जाने की घोषणा की है।

डेराबसी बूचड़खाने के उद्घाटन पर रोक—लुधियाना में चातुर्मास रत रहे श्रमण आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि की प्रेरणा से पंजाब के मुख्य मंत्री श्री बेअंत सिंह ने डेराबसी में २३ सितम्बर को खुलने वाले बूचड़खाने को रोक दिया है तथा उसे हमेशा के लिये न खुलने हेतु आश्वासन दिया है।

शोक संवेदन

विद्वान मनीषी डा० हर्ष नारायन, जो जैन दर्शन के भी मर्मज्ञ विद्वान थे, का ७२ वर्ष की आयु में, लखनऊ में ६ अगस्त, १९९४ को निधन हो गया।

प्रमुख उद्योगपति एवं समाज सेवी श्री रतन लाल गंगवाल, जो दिगम्बर जैन महासमिति एवं भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के अध्यक्ष तथा टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के ट्रस्टी रहे थे, का नई दिल्ली में १३ अगस्त को स्वर्गवास होगया।

वरिष्ठ पत्रकार एवं पाक्षिक पत्र 'वीरवाणी' के सम्पादक और अन्त तक कर्मठ श्री सौभाग्यमल जैन रांवका का जयपुर में १७ अगस्त को अकस्मात देहावसान हो गया।

भारत जैन महामण्डल के महामन्त्री तथा 'जैन जगत' मासिक पत्र के सम्पादक श्री चन्दनमल 'चाँद' का बम्बई में २६ सितम्बर को निधन हो गया।

दिगम्बर जैन समाज के जाने-माने विद्वान, सिद्धान्ताचार्य पं० मनोहर लाल जी शास्त्री रांची में २१ सितम्बर को सदा के लिये अनन्त में विलीन हो गये।

७८ वर्षीय दिगम्बर जैन आचार्य सुमति सागर महाराज का श्री सोनागिर सिद्ध क्षेत्र पर ३ अक्टूबर को समाधिपूर्वक स्वर्गवास हो गया। उनके स्थान पर उन्हीं की इच्छानुसार एलाचार्य भरत सागर महाराज का धार नगरी में १६ अक्टूबर को आचार्य पदारोहण सम्पन्न हुआ।

सरल परिणामी और धर्मनिष्ठ फर्नीचर-व्यवसायी ८३ वर्षीय श्री हुकुम चन्द्र जैन, जो हमारी समिति के उप मन्त्री श्री नरेश चन्द्र जैन के पिताश्री थे, का लम्बी बीमारी के बाद इलाहाबाद में ६ अक्टूबर को स्वर्गवास हो गया।

वयोवृद्ध सेठ श्रीपति जैन का लम्बी बीमारी के बाद अजमेर में १८ अक्टूबर को स्वर्गवास हो गया। सेठ जी वर्षों अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन जैसवाल परिषद के राष्ट्रीय अध्यक्ष, श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के महामन्त्री एवं उपाध्यक्ष रहे। वह बड़े धर्मनिष्ठ, विद्वान, स्वाध्याय प्रेमी, मृदु स्वभावी थे तथा हमारे परम मित्र थे।

हिन्दी साहित्य के वयोवृद्ध मर्मज्ञ विद्वान डा० भगीरथ मिश्र १२ नवम्बर को सागर में दिवंगत हो गये।

वयोवृद्ध दिगम्बर जैन आचार्य श्री नेमिसागर महाराज का हैदराबाद दक्षिण से २१५ किलोमीटर दूर एकको रोड पर १५ नवम्बर को समाधिपूर्वक स्वर्गवास हो गया। आचार्य श्री बड़े सरल एवं शान्त परिणामी थे। दो वर्ष पूर्व उन्होंने लखनऊ में अपने शिष्य आचार्य दयासागर महाराज के साथ चातुर्मास किया था।

'वीरवाणी' पाक्षिक पत्र के यशस्वी सम्पादक और इतिहास, जैन साहित्य एवं पुरातत्त्व के मनीषी विद्वान ७६ वर्षीय समाज-रत्न पं० भंवर लाल जी न्यायतीर्थ जयपुर में १६ नवम्बर को हमारा साथ छोड़ गये।

स्व० पं० अजित प्रसाद की पुत्री और हमारी समिति के सदस्य श्री कैलाश भूषण जिन्दल की बड़ी बहन मेरठ निवासी विदूषी श्रीमती शान्ति जैन का ८४ वर्ष की वय में १६ नवम्बर को निधन हो गया।

जसवन्त नगर के स्व० सेठ सुदर्शन लाल जी की धर्मपत्नी और जापान में भारतीय दूतावास में प्रथम सचिव श्री शशि भूषण जैन की माता जी, ८० वर्षीया धर्मपरायण, सरल परिणामी और कर्मठ महिला-रत्न श्रीमती प्रभावती देवी जैन का लखनऊ में २६ नवम्बर को स्वर्गवास हो गया।

उपर्युक्त सभी दिवंगत के प्रति **शोधादर्श** परिवार अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता है, दिवंगत आत्माओं की सद्गति और शान्ति के लिये प्रार्थना करता है, और शोक संतप्त परिवारों के प्रति हार्दिक संवेदना व्यक्त करता है। ★

पाठकों की दृष्टि में

शोधादर्श २३वां अंक प्राप्त हुआ। मैंने पूरा ही **शोधादर्श** पढ़ डाला है। उसमें वैसे तो सभी के लेख काफी सराहनीय एवं पठनीय हैं, परन्तु आदरणीय चाचाजी (श्री अजित प्रसाद जैन) द्वारा लिखा समाचार विमर्श अत्यन्त उत्तम लगा। उसमें लेख—दान महोत्सव, ब्रह्मोत्सव, सिंह रथ प्रवर्तन-एक नाटक, जैन विश्वविद्यालय का शिलान्यास, राजर्षि, आचार्य श्री ने भी अभिनय किया, आचार्य श्री शान्ति सागर महाराज की स्वर्ण पादुका, आदि पर जो सारगर्भित चुटीली टिप्पणियां की गईं वे ऐसे सामाजिक लोगों के लिये जरूरी भी हैं जिन्हें केवल दिखावे के अलावा कुछ समझ ही नहीं आता है। चाचाजी के लेख की जितनी प्रशंसा की जाय कम ही है। मैं उन्हें इसके लिए बहुत-बहुत बधाई देती हूं एवं पत्रिका के उज्जवल भविष्य की कामना करती हूं।

—श्रीमती वीरबाला जैन
सहारनपुर

शोधादर्श अङ्क २३ प्राप्त हुआ। इसमें प्रकाशित लेख सारगर्भित एवं ज्ञानवर्धक हैं। माननीय डा० ज्योति प्रसाद जी जैन का लेख 'मनुष्य के त्राण का अमोघ उपाय : धर्म' अत्यन्त उपयोगी एवं सामयिक है। 'भगवान महावीर और उनकी विश्व मंगल की भावना' शीर्षक से डा० शशि कान्त जी एवं श्री सलेक चन्द्र जैन की वार्ता बहुत रोचक और ज्ञानवर्धक लगी। इसी प्रकार श्री जमना लाल जैन का लेख 'केलझर का पुरातात्त्विक वैभव' और डा० टी० वी०

जी० शास्त्री का लेख 'प्राचीन जैन स्थल वड्डमानु का संरक्षण' भी बहुत प्रशंसनीय हैं। अतः धर्म, संस्कृति, इतिहास आदि विविध पक्षों से सम्बन्धित प्रामाणिक जानकारियों से ओत-प्रोत **शोधादर्श** के सफल सम्पादन हेतु श्रीयुत डा० शशि कान्त जी को अनेकशः साधुवाद !

—डा० कृष्ण पाल त्रिपाठी
बलिपुरटाटा, इलाहाबाद

शोधादर्श के प्रति मेरा अनुराग यूं ही नहीं है। आप लोग जिस उदार, सच्चे और कर्मठता की भावना से जैन धर्म, संस्कृति तथा साहित्य की सेवा कर रहे हैं, उससे न सिर्फ मात्र जैन समाज बल्कि सम्पूर्ण बौद्धिक समाज आपके प्रति कृतज्ञ है। इसका हर अंक संग्रह और पठन के योग्य है। एक सुझाव है कि इसमें कुछ जैन इतिहास और पुरातत्त्व की बातें निश्चित रुप से हों, इसकी कोशिश की जाये।

—डा० विनोद कुमार तिवारी
रोसड़ा

शोधादर्श का २३ अंक मिला। आपने शिखर जी पर एकदम सही दृष्टि-कोण अपनाया है। मुझे आशा है कि आपकी लेखनी इसी प्रकार इस समस्या पर लिखती रहेगी। आपके सहयोग और आशीर्वाद से इस आन्दोलन को सफलता मिलेगी, मुझे इसमें सन्देह नहीं है।

—श्री सुभाष जैन
नई दिल्ली

शोधादर्श बराबर मिलता है। उसके लिए हमेशा उत्सुकता बनी रहती है। सब ही सामग्री खोजपूर्ण तो रहती ही है लेकिन उससे बहुत कुछ चिन्तन के लिये भी मिलता है। शोधपूर्ण लेख रहते हैं।

—श्री सत्यन्धर कुमार सेठी
उज्जैन

जुलाई माह का **शोधादर्श** मिला और उसमें आपने 'जैन धर्म का उपहास' जो पृष्ठ ६० पर लिखा है, इस विषय में श्वेताम्बर समाज की श्री जम्बू द्वीप विज्ञान रिसर्च सेन्टर पालिताना ने भी अपनी छपी सामग्रियां भेजी हैं। मैंने भी इस विषय पर बहुत समझने की कोशिश की है। अध्ययन करने का प्रयत्न किया। पर आधुनिक विज्ञान की बातें इतनी अधिक खोजबीन करने के उपरान्त

विश्व के सभी देश जिन निर्णयात्मक स्थितियों पर पहुंचे हैं, उनके आगे अपनी दलील तभी रखनी चाहिए जबकि हम लोग उस पर भी खोजबीन कर अध्ययन कर लें।

जिस समय हस्तिनापुर में जम्बू द्वीप का निर्माण कार्य आरम्भ हुआ था, उस समय श्री बाबू लाज जी जमादार तथा हस्तिनापुर के प्रबन्धक महोदय आये थे। उनसे मैंने अपने कुछ प्रश्नों का उत्तर चाहा तो हमें कोई समाधान नहीं मिला। अब मैं पालिताना वालों से सम्पर्क में हूं। देखिये, उनसे क्या सूचना मिलती है।

'चरण पादुका' के विषय में मुझे भी आश्चर्य हो रहा है। इस प्रकार का का कार्य क्यों हो रहा है ?

—श्री सुबोध कुमार जैन
आरा

शोधादर्श मुझे बराबर मिल रहा है। प्रत्येक अंक पढ़ने के बाद सोचता था कि आपको पत्र लिखूं पर किसी न किसी कारण टलता गया।

वैसे तो इस समय जैन समाज में दो-ढाई सौ पत्र-पत्रिकाएं निकल रही हैं पर अधिकांश तो कागज एवं धन का अपव्यय मात्र ही कही जा सकती हैं। **शोधादर्श** उन सबसे अलग है। **शोधादर्श** के मुख्य आकर्षण हैं आपका सम्पादकीय एवं 'समाचार विमर्श' के अन्तर्गत दिये गये समाचारों के बाद आपकी सटीक, स्पष्ट, निर्भीक एवं विचारोत्तेजक टिप्पणियां। इनसे तथाकथित ढोंगी, पदलोलुप समाज सुधारकों तथा धर्म प्रेमियों को सबक लेना चाहिए। अन्य पत्रिकाओं के सम्पादकों, पदाधिकारियों की करनी और कथनी में विरोधाभास रहता है।

शायद आपको पता होगा कि एक ओर तो कुछ पत्रिकाएं डबलरोटी खाने के विरोध में लेख छापती हैं और दूसरी ओर डबलरोटी के विज्ञापन भी छापती हैं। पर इस प्रकार की बातों का न तो कोई विरोध करता है और न इस ओर कोई ध्यान ही देता है क्योंकि पत्रिकाओं के मालिक एवं सम्पादक समाज के प्रतिष्ठित धनी मानी व्यक्ति कहे जाते हैं, उनसे विरोध कोई क्यों ले ? इतना ही नहीं, ऐसे भी उदाहरण दिये जा सकते हैं कि समाज सेवा के नाम पर लोग अपनी तिजोरियां भर रहे हैं। तीर्थ क्षेत्रों की कमेटियों में वही लोग वर्षों से बने आ रहे हैं जिनकी ईमानदारी पर प्रश्न चिन्ह लगे हुए हैं। न तो कभी कोई हिसाब-किताब दिया जाता है और न किसी नये व्यक्ति को आगे आने का मौका दिया जाता है। क्या इससे भी बड़ी विडम्बना कोई हो सकती है कि एक

ही व्यक्ति एक ही शहर की सभी संस्थाओं का पदाधिकारी बने ? ऐसी स्थिति में यदि समाज का युवा वर्ग सामाजिक, धार्मिक प्रवृत्तियों के प्रति उदासीन रहे तो उसे हम दोष कैसे दे सकते है ?

शोधादर्श बराबर निकलता रहे और आपके सम्पादकीय तथा सटीक टिप्पणियों से पाठकों को जागरूक करता रहे, यही कामना है।

—श्री महेन्द्र राजा जैन
इलाहाबाद

शोधादर्श अंक २३ प्राप्त हुआ। सम्पादकीय 'श्री सम्मेद शिखर विवाद विमर्श' में भारतीय जैन मिलन के महासचिव वीर सतीश जैन पर टिप्पणी सारगर्भित व सामयिक है। मिलन एक सामाजिक संस्था है जो लायन्स-रोटरी के पद चिन्हों पर ही चल रही है, उसे इस विवाद का हल स्वयं मध्यस्थता कर या विकल्प रुप अपनी राय देनी चाहिए थी। वैसे तटस्थ रहते तो अधिक अच्छा रहता।

आपकी सम्मति से मैं सहमत हूं कि जैन धर्म के समस्त आम्नायों के मुनि-गुरु आपस में बैठकर मामला सुलझाएं और त्याग-एकता-समता-सौहार्द को मजबूत बनाएं।

—श्री वीरेन्द्र जैन पहाड़वाले
नजीबाबाद

शोधादर्श का २३वां अङ्क प्राप्त हुआ। आद्योपान्त पढ़कर अमन्द आनन्द की अनुभूति हुई तथा बौद्धिक आहार की प्राप्ति भी।

प्रस्तुत पत्रिका में अनेक विशेषताएं हैं। सूक्ष्म दृष्टि से पढ़ने वाले प्रबुद्ध पाठक इस बात का अनुभव करते हैं, ऐसा मैं समझता हूं।

यों इसके सभी लेख पठनीय रहते हैं पर इसका सम्पादकीय अत्यन्त महत्वपूर्ण रहता है—इसमें दो मत नहीं हो सकते। एवं इसमें समाचारों का प्रकाशन अपने ही ढंग का होता है। अन्य किसी जैन पत्र-पत्रिका में जो समाचार नहीं मिलते वे इसमें मिल जाते हैं। प्रायः सभी समाचार विस्तृत रहते हैं और साथ में उनकी उचित समीक्षा भी रहती है।

सम्पादकीय में आगमानुकूल हित की बातें रहती हैं। हो सकता है वे किन्हीं को बुरी लगती हों क्योंकि 'हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः'—ऐसे वचन का मिलना दुर्लभ है जो हितकारी हो और मनोहारी भी।

प्रस्तुत पत्रिका कुछ मुनिराजों से विनम्र निवेदन करती है कि वे आगमानुसार अल्पारम्भ परिग्रही रहें ताकि अपना और समाज का कल्याण कर सकें।

तत्वार्थ सूत्र बतलाता है 'अल्पारम्भपरिग्रहत्वं मानुषस्य'—अल्प आरम्भ और अल्प परिग्रह रखना मानुष्यायु के आश्रव का कारण होता है।

जो आत्म कल्याण के लिए दीक्षित होकर निवृत्ति मार्ग से प्रवृत्ति मार्ग की ओर बढ़ने लगते हैं और परिग्रह इकट्ठा कर लेते हैं, वे स्वयं सोचें कि ऐसा करने से वे स्वयं का कल्याण कैसे करेंगे और कैसे समाज का? यदि वे ऐसा नहीं कर सकते अर्थात् अपरिग्रही नहीं बन सकते तो कहना होगा कि वे इस उक्ति को चरितार्थ करते हैं—'निकले थे जिन भजन को, औटन लगे कपास'।

अत: विनम्र करबद्ध प्रार्थना है कि कुछ (सब नहीं) मुनि समय को देखते हुए स्व-पर कल्याण करने के लिये पुन: एक बार आत्म निरीक्षण करके आगमानुसार मार्ग का आश्रय ले लें, भोले भाले भक्तों की अन्ध श्रद्धा का दुरुपयोग न करें और न पत्थर की नौका बनें।

यदि प्रस्तुत पत्रिका या अन्य कोई पत्रिका भवाभिनन्दी मुनिराजों से उपर्युक्त विनम्र निवेदन करे तो उन्हें बुरा नहीं मानना चाहिए, अपना भला सोचना चाहिए।

प्रस्तुत पत्रिका अभी बाल्यकाल से ऊपर उठ रही है। अभी तक इसने जो प्रगति की है वह कम नहीं है। समय की गति के साथ इसकी प्रगति होती रहेगी। इसके ग्राहक बन कर समाज के जिज्ञासु पाठकों को इसके विकास में सहायक होना चाहिए।

—पं० अमृत लाल शास्त्री
लाडनूं

शोधादर्श २३ मिला। आदरणीय अजित प्रसाद जी की टिप्पणियां ब्रह्मोत्सव, सिंह रथ प्रवर्तन-एक नाटक, भगवान महावीर का जीवन्त अभिनय, आचार्य शान्ति सागर की चरण पादुका, आदि बड़ी चुटीली लगी। पं० कैलाश चन्द जी, आचार्य जुगल किशोर जी मुख्तार जैसी निर्भीकता दिखाई देती है। पर रुढ़िवादी जैन समाज इतना जड़ और निठुर हो गया है कि इन सबका कोई असर ही नहीं होता है, संभव है कालान्तर में इसके प्रभाव दिखाई दें।

—श्री कुन्दन लाल जैन
विश्वास नगर, शाहदरा

शोधादर्श का २३ वां अंक प्राप्त हुआ। ज्ञानवर्धक सामग्री से भरपूर अंक पढ़ कर अति प्रसन्नता हुई। अगले अंक की प्रतीक्षा है।

श्रीमती राजदुलारी जैन
स्वरुप नगर, कानपुर

चिन्तन कण

—डा० शशि कान्त

आसक्ति, अनासक्ति और विरक्ति—यह शब्द-त्रयी मन की उन अवस्थाओं को सूचित करती है जिन पर सारा जीवन-व्यापार निर्भर है।

आसक्ति का आधार आकर्षण है। आकर्षण जब प्रगाढ़ रागात्मकता से संश्लिष्ट हो जाता है तो आसक्ति में परिणत हो जाता है।

आकर्षण मात्र आकर्षण ही रहे और उसमें कोई रागात्मक संप्रेषण न हो तो वह स्वयं विलीन हो जाता है—विस्मृत हो जाता है। यह अनासक्ति का भाव है।

आकर्षण विकर्षण में बदल जाय—जो चाहा जाये वह दूर हट जाये या उससे कोई स्वयं दूर हट जाये, तो वह विरक्ति को प्रश्रय देता है।

जीवन में जितना आकर्षण का प्रभाव है, उससे अधिक आकस्मिकता का वर्चस्व है। सभी कुछ आकस्मिक है—जन्म भी और मृत्यु भी, अभाव भी और समृद्धि भी, प्रयत्न भी और प्रयत्न-शून्यता भी। फिर भी व्यक्ति का अहं उसे स्व-निर्माण की प्रतीति कराता है।

जिन्दगी में कोई मुकम्मिल जहां नहीं होता
कहीं ज़मीं तो कहीं आसमां नहीं होता

—परन्तु कभी-कभी जमी और आसमां के होते हुए भी एक अजीब-सी वीरानगी और उदासी का घटाटोप रहता है जो जिन्दगी को ही बोझिल बना दे—समृद्धि के प्रांगण में सभी सुख-सुविधाओं के होते हुए भी व्यक्ति अपने को रीता-रीता महसूस करता है। यह एक विचित्र मनोमय स्थिति है कि व्यक्ति को जो प्राप्त है उससे आत्म-तोष नहीं होता वरन् वह मृग-मरीचिका से भ्रमित होता है।

मन इच्छाओं का स्रोत और केन्द्र है। मन के नियमन का उपाय संयम है। संयम द्वारा भावनाओं के शोधन और अनुभूतियों के परिमार्जन की प्रक्रिया सहज होती है।

★

इस अंक के लेखक

श्री अजित प्रसाद जैन : उप सचिव, उ० प्र० शासन (अवकाश-प्राप्त)
मंत्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ० प्र०
पारस सदन, आर्यनगर, लखनऊ-२२६००४

डा० ऋषभ चन्द्र जैन : सम्पादक, जैन सिद्धान्त भास्कर
जैन बाला विश्राम, धनुपुरा, आरा-८०२३०१

श्री कुन्दन लाल जैन : प्रिन्सिपल (अवकाश-प्राप्त)
६९, विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली-११००३२

श्री कैलाश भूषण जिन्दल : आई० आर० एस० (अवकाश-प्राप्त), एडवोकेट
अजिताश्रम, गणेशगंज, लखनऊ-२२६०१८

डा० ज्योति प्रसाद जैन (स्व.) : विश्व-विश्रुत विद्वान

श्री एम० डी वसन्तराज : प्रोफेसर, जैन विद्या (अवकाश-प्राप्त)
नं० ८६, नवां क्रास, नेविलु रोड, कुवेम्पु नगर,
मैसूर-५७००२३

श्री एम० एल० जैन : जस्टिस, दिल्ली उच्च न्यायालय (अवकाश-प्राप्त)
२१६, मन्दाकिनी एन्क्लेव, अलकनन्दा,
नई दिल्ली-११००१९

श्री प्रकाश चन्द्र जैन 'दास' : १२-सी० डी०, आदर्श नगर, आलमबाग,
लखनऊ-२२६००५

श्री रमा कान्त जैन : उप सचिव, उ० प्र० शासन (अवकाश-प्राप्त)
ज्योति निकुञ्ज, चारबाग, लखनऊ-२२६००४

डा० रानी मजूमदार : प्रवक्ता, संस्कृत विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

डा० शशि कान्त : विशेष सचिव, उ० प्र० शासन (अवकाश-प्राप्त)
ज्योति निकुञ्ज, चारबाग, लखनऊ-२२६००४

——

(कवर पृष्ठ २ का शेष)

१६.	बधाई		७०
१७.	समाचार विविधा		७१
१८.	शोक संवेदन		७२
१९.	पाठकों की दृष्टि में		७४
२०.	चिन्तन कण	—डा० शशि कान्त	७९
२१.	इस अंक के लेखक		८०

मूल्य प्रति—१० रु०
वार्षिक—२५ रु०
आजीवन—२५० रु०

निवेदन

सुधि पाठक कृपया अपनी सम्मति और सुझावों से अवगत करावें ताकि पत्रिका के स्तर को बनाये रखने और उन्नत करने में हमें प्रोत्साहन तथा उद्बोधन प्राप्त होता रहे। कृपया पत्रिका पहुंचने की सूचना भी देवें।

—सम्पादक मण्डल

आवश्यक सूचना

शोधादर्श चातुर्मासिक पत्रिका है और सामान्यतया इसके अंक मार्च, जुलाई व नवम्बर में प्रकाशित होते हैं।

शोधादर्श में प्रकाशनार्थ शोधपरक अप्रकाशित लेख आमन्त्रित हैं। लेख कागज के एक ओर सुवाच्य अक्षरों में लिखित अथवा टंकित होना चाहिए और उसमें यथावश्यक सन्दर्भ/स्रोत सूचित किया जाना चाहिए। लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रख लें।

शोधादर्श में समीक्षार्थ पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं की दो प्रतियां भेजी जायें।

शोधादर्श में प्रकाशित लेखों को उद्धरित किये जाने में आपत्ति नहीं है, परन्तु शोधादर्श का श्रेय स्वीकार किया जाना और पूर्ण सन्दर्भ दिया जाना अपेक्षित है।

प्रकाशनार्थ लेख और समीक्षार्थ पुस्तक प्रबन्ध सम्पादक को 'पारस सदन, आर्य नगर, लखनऊ-२२६००४' के पते पर भेजे जायें।

—प्रबन्ध सम्पादक

उपयोगी साहित्य

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ० प्र० लखनऊ के प्रकाशन—

1. भगवान महावीर स्मृति ग्रन्थ—सम्पादक डा० ज्योतिप्रसाद जैन Rs. 50/-
2. आदितीर्थ अयोध्या— ले० डा० ज्योतिप्रसाद जैन 10/-
3. Bhagwan Mahavira : Life, Times & Teachings by Dr. Jyoti Prasad Jain 10/-
4. Way to Health & Happiness–Vegetarianism by Dr. Jyoti Prasad Jain 4/-
5. Mysteries of Life and Eternal Bliss by Prof. Anant Prasad Jain 7.50
6. जीवन रहस्य एवं कर्म रहस्य— ले० प्रो० अनन्त प्रसाद जैन 7.50

विशेष सूचना

इतिहास-मनीषी विद्यावारिधि डा. ज्योति प्रसाद जैन की–

जैन-ज्योति : ऐतिहासिक व्यक्तिकोश, प्रथम खण्ड (अ से अं) Rs. 50/-
The Jaina Sources of the History of Ancient India
Religion and Culture of the Jains
भारतीय इतिहास : एक दृष्टि
प्रमुख जैन ऐतिहासिक पुरुष और महिलायें
तीर्थंकरों का सर्वोदय मार्ग

तथा डा. शशि कान्त की–

Political and Cultural History of Mid-North India Rs. 175/-
The Hathi-Gumpha Inscription of Kharavela and theBhabru Edict of Asoka–A Critical Study (2nd Enlarged Ed.)

प्राप्ति स्थान :

ज्ञानदीप प्रकाशन

ज्योति निकुंज, चारबाग,

लखनऊ–२२६ ००४

मुद्रक : रत्न-ज्योति प्रेस, चारबाग, लखनऊ–४ (उ०प्र०)